घड़ी दो घड़ी

डॉ० राजानन्द

बस इतना ही :

उपन्यास काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ होता है, यथार्थ होते हुए भी काल्पनिक। उसमें के पात्र, नारी-पुरुष' होते हुए भी लेखक की सर्जना-क्षमता का स्पर्श लिए हुए होते हैं। वह सच होते हैं, प्रति-कृति भी होते हैं।

कथा-चरित्र, यदि पाठक को नजदीकी लगते हैं, अपने से लगते हैं, तो लिखना सार्थक हो जाता है।

आपके सामने उपन्यास नही चरित्र प्रस्तुत कर रहा हूँ। अगर ये आपकी विश्वसनीयता तथा सम्वेदना पा लेते है, तो अपने को सफल मानूँगा।

धन्यवाद।

—राजानन्द

परिस्थितियो के बदलाव पारिवारिक बनावट पर ही असर नही डाल रहे हैं, सास्कारिक रचावों को भी तरह-तरह का रंग दे रहे है। पुश्तैनी पेशे का माहौल जब नये पेशो की स्थितियो के टकराव में आता है, तब तीव्र आन्तरिक द्वन्द्व शुरू होते है। इन द्वन्द्वों और तनावों को सहते व्यक्ति कभी टूटते हैं, कभी संयोजित होते है। फिर बिखरते है, फिर संयोजित होते हैं। आज के परिवेश मे शायद इसी प्रक्रिया का नाम जिन्दगी है।

डॉ० राजानन्द के इस उपन्यास के कथा-चरित्र उस पेशे से सम्बन्धित हैं जिनको हमने गायिका या नर्तकी कहकर उपेक्षा भी दी है पर उनको राग-रस-रग की स्रोतस्विनी भी माना है। कला क्योंकि पुरुषों के ऐश का साधन रही, इसलिए उसको भी अवमूल्यित होना पडा।

क्या इनकी संतान दूसरे सम्मानजनक पेशों को अपनाकर और उनमे श्रेष्ठता अर्जित करने के बाद भी बराबरी का स्तर पा सकी ? दो गायिका सगी बहिनों के दो बेटों की कहानी इस उपन्यास का विषय है। पिता के नाम से न जाने जानेवाले दो गायिका बेटों की सघर्ष कथा को डॉ० राजानन्द ने अपनी गहरी दृष्टि और निकट अध्ययन का स्पर्श देकर हर तरह से सम्वेद्य तथा प्रभावशाली बनाया है। आशा है पाठक 'घडी दो घडी' उपन्यास के चरित्रों को सम्वेदना के स्तर से लेंगे, क्योंकि वे उसी परिवेश मे है, जिसमे हम सब जी रहे है।

—प्रकाशक

एक है डाक्टर अमलेन्दु, दूसरा है रजनीशकान्त। दोनों सगी बहिनो के बेटे है। दोनो बहिनो की माँ अपने वक्त की मशहूर गायिका थी।

नानी की कहानी का आधार तो सुनी-सुनाई बातों से ही जुड़कर बन सका लेकिन दोनों बहिनों मे डाक्टर अमलेन्दु की माँ अब भी जिन्दा है, हाँ, रजनीशकान्त की माँ ज्यादा उम्र नही ले पाई।

लोगो से सुना था कि किसी वक्त मे इन्द्राबाई इस शहर की पहले दर्जे की गायिका थी—जितनी बला की खूबसूरत, उतनी मीठे स्वर वाली। उसका मुजरा सिर्फ दो ही स्तर के लोगों के यहाँ होता था, या तो ठाकुरों की महफिलों मे या किसी लखपती सेठ के लड़के की शादी में।

इन्द्राबाई की लाल पत्थरो की कोठी अब भी सावनी मोहल्ले मे मौजूद है, जिसमे उसका नाती डाक्टर अमलेन्दु रहता है। डाक्टर अमलेन्दु की क्लीनिक शहर-भर में नाम वाली है और लोगों का ऐसा मानना है कि डाक्टर अमलेन्दु के हाथ मे आया गम्भीर से गम्भीर बीमारी वाला रोगी ठीक हो जाता है।

एक बार नाम प्रसिद्ध हो जाता है फिर लोग तारीफ मे अतिशयोक्ति से काम लेने लगते है। यह फायदा अमलेन्दु को प्रैक्टिस शुरू करते ही मिल गया जिसका लाभ वह अब तक उठा रहा है।

सावनी मोहल्ले की उस लाल कोठी से हालांकि अब भी वे कथाएँ जुड़ी है, जिनका सम्बन्ध इन्द्राबाई से रहा, उसकी बेटियों नीनाबाई और मीनाबाई से रहा, लेकिन अब यह कोठी डाक्टर अमलेन्दु के नाम के साथ जुड़ी है, जहाँ इतने रोगी आते है कि डाक्टर अमलेन्दु को दो सहायक डाक्टर रखने पड़ रहे है।

नीनावाई अब भी जिन्दा है, मीनावाई पैंतालीस की उम्र आते-आते मर गई। रजनीशकान्त को माँ के मरने का काफी गहरा धक्का लगा था, लेकिन उसने उस गम को अन्दर ऐसा दवाया, कि वस किसी सर-काये गये पत्थर की तरह पडकर रह गया।

कहते हैं कि इन्द्रावाई ने पेशे को तव तक जारी रखा, जव तक उसका सामना एक गायक सन्यासी से नही हुआ था। उसके बाद उसने अपने मुजरो को चुनीन्दा लोगों के लिए सीमित कर दिया था। फिर एक वक्त वह आया जव इन्द्रावाई उस गायक सन्यासी की हो कर रह गई···हालांकि सन्यासी ने अपना फक्कडी जीवन आखिर तक नही छोडा। जव कभी घूमते-घामते शहर में आता तो इन्द्रावाई की लाल कोठी मे रहता। उचग सवार होती या उकता जाता तो फिर किसी तीर्थ को चल देता।

नीना और मीना उसी सन्यासी की वेटी थी, यह जानने वाले कहते है। इन दो वेटियो के अलावा एक लडका भी हुआ था इन्द्रवाई के—यानी नीना, मीना का भाई, लेकिन वह दस बरस का पाला-पोसा अचानक मर गया।

कहते है कि इन्द्रावाई पर इस आघात का ऐसा असर पड़ा कि वह विरक्ति की तरफ मुड गई। धीरे-धीरे उसने नीना, मीना को अपने ग्राहक सौंपकर मुजरा-वुजरा सब छोड़ दिया। पूजा-पाठ में लग गई।

और यह अजीव-सी ही बात लगेगी कि इन्द्रावाई अपने आखिरी सालो मे सन्यासी गायक के साथ फिरती रही, साधुनी वनी।

नीना और मीना की जीवन-कथा के इतने साफ सूत्र नही मिले, जितने इनकी माँ के मिल सके। इसकी एक वजह तो यह रही कि इन्द्रावाई का गायक सन्यासी से सम्वन्ध अपने वक्त मे काफी चर्चित हो गया था। दूसरी वजह यह रही कि हालांकि नीना और मीना माँ की तरह खूवसूरत और अपने पेशे में पटु थी, लेकिन उनका नाम उतना मशहूर नही हो सका था जितना उनकी माँ का।

लोग तो यह भी नही जान सके कि नीना के वेटे डाक्टर अमलेन्दु का वास्तविक पिता कौन था। और मीना के बेटे रजनीशकान्त का

वास्तविक पिता कौन था। इन्द्राबाई की जिन्दगी का मोड़ आया भी तो अचानक और खुल्लम-खुल्ला इस तरह आया कि शहर में खबर की तरह फैल गया।

कहते हैं कि ठाकुर रिछपाल के यहाँ गायक संन्यासी आये हुए थे। उन्हीं दिनों में ऐसा मौका पड़ा कि इन्द्राबाई का ठाकुर साहब के यहाँ मुजरा हुआ। इन्द्रबाई जहाँ गजल और भजन गाने में माहिर थी, वहीं वह शास्त्रीय राग भी बड़ी गहराई से गाती थी और फिर जब राग पर नृत्य करती थी, तब तो समा बाध देती थी।

जवान उम्र, कशिश जगाने वाला सौंदर्य, फिर अव्वल दर्जे की अदायगी। कहने वाले कहते हैं, उस रात सन्यासी और इन्द्राबाई में राग-रागिनी की अदायगी मे होड़ हो गई। महफिल पौ फटने तक चली सो चली, उस रात इन्द्राबाई ने सन्यासी के चरण पकड लिए—महाराज, मैं हार मानती हूँ, आज से आप मेरे गुरु।

लेकिन उस गायक सन्यासी ने मुँहफट्ट होकर कह दिया था—गुरु का रिश्ता तुम जैसी रम्भा से नहीं हो सकता। अगर तुम रमतेराम को अपनाना चाहो तो अपना सकती हो।

इन्द्राबाई सकते में रह गई थी।

लोग कहते हैं कि इन्द्राबाई मे पता नहीं किस देवी ने प्रवेश किया कि वह बिना हिचक कह उठी—महाराज, अपनाना या त्यागना तो आपका काम है। अगर आप एक मुजरे वाली को अपना सकते है तो मुझे क्या उज्र ! आपका धर्म तो भ्रष्ट नहीं होगा ?

उस गोरे-चिट्टे, बलिष्ठ सन्यासी ने अपने गले का फूलों का हार उतारा था, और सबको अचम्भे में डालते हुए इन्द्रा की तरफ फेंक दिया था—यह लो ! मेरी स्वीकृति और धर्म का प्रमाण। फिर संन्यासी ने ठाकुर रिछपाल से कहा था—ठाकुर, इस शहर मे हमारे ठहरने के दो ठिकाने हो गये—एक तुम्हारा घर, दूसरा इस रम्भा का। हम आज से इसके भी हो गये।

इन्द्रा के दिल मे कोई सदिग्धता फुसफुसा रही थी—यह सत्य है या खेल ?

लेकिन यह आगे सच निकला कि गायक सन्यासी ने वास्तव में इन्द्रा को अपना लिया था ।

लोगों ने कहा—होनी होकर रहती है, चाहे कोई इसे इन्द्रा का पेशा कहे; लोगों को फँसाने-रिझाने का पेशा या सन्यासी की अधोगति।

जो घटना नाटक की तरह घटित हो जाये; जिसके आगे-पीछे कुछ भी सोचा हुआ, या नियोजित न हो, उसे होनी ही तो कहा जा सकता है।

इन्द्राबाई के नाम के साथ गायक सन्यासी का नाम जुड़ गया। उस वक्त किस-किस तरह की टिप्पणियाँ हुई होंगी इन्द्रा और सन्यासी को लेकर, यह तो कौन बताता ? लेकिन घटना काण्ड की तरह फैली होगी।

संन्यासी तो मस्त-मौला पछी होता है। कभी यहाँ कभी वहाँ। इन्द्राबाई को लेकर लोग सन्यासी की डटकर आलोचना करते थे ।

—काहे का संन्यासी, पाखण्डी है ।

—ऐसे सन्यासी धर्म की आड मे औरतें फँसाते हैं और मजा लूटते हैं ।

—अरे, इन जैसों का क्या है । अमीरो की रोटी तोड़ते है, छोकरियो से रास-लीला रचाते हैं ।

—धर्म रह कहाँ गया है जी, यह तो काहिल लोगों का पेशा हो गया है। लोगो से सुना कि संन्यासी के बारे में ऐसी हजार बातें होती थी लेकिन फिर भी उसमें गजब का सम्मोहन था। भीड-की-भीड उमड पडती थी, जिन दिनो वह शहर मे आता था । एक तो संन्यासी, ऊपर से कमाल का गायक । न चेले, न गुरु । निपट अकेला ।

ठहरता था इन्द्राबाई के यहाँ तो वहाँ भी लोग पीछा नही छोड़ना चाहते थे, लेकिन उसने सख्त आज्ञा दे रखी थी; वह सिर्फ प्रवचन के वक्त, प्रवचन स्थान पर ही लोगों से मिल सकता था। लोग दर्शन के लिये इन्द्राबाई की लाल कोठी के आस-पास मँड़राते रहते थे। कब सन्यासी निकल कर कही जाये, कब उन्हे दर्शन-लाभ हो ।

सन्यासी का कायदा था कि खुली कार मे जाता था। कभी पीछे

वैठता, अक्सर खुद कार चलाने लगता। लोग कहते उसे कई तरह की सिद्धियाँ प्राप्त है। सूर्य की तरफ देखते हुए कार चलाना, तालाव में घण्टों तैरते रहना और उसी मे तरह-तरह के योगासन लगाना, तैरते-तैरते मौज में गाते रहना—जैसे दीन-दुनिया और सुनने वाले एकत्रित लोगों से उसे कोई सरोकार नही।

जिन्होंने उसे धर्म पर बोलते हुए सुना उनका कहना था कि वह प्रवचन नही करता था, श्रोताओ के अन्दर पैठता था। वह चर्चा करता था जीवन की, धर्म की, लेकिन सुनने वालो को अनुभूति होती थी कि जैसे वह एक-एक से अलग-अलग बात कर रहा हो। उनकी आत्मा को छेड़ रहा हो। उनके अन्त करण को प्रेरित कर रहा हो.

ईश्वर कुछ भी नही है तुम हो। तुम ही भगवान-ब्रह्मा-विष्णु-महेश हो। तुम्हीं मे रचयिता है, क्योंकि तुम रचते हो, रच सकते हो। अपने को रचो, अपने पास के वातावरण को रचो। तुम विष्णु हो—रचे को साधो, उसे रमणीय, सौदर्य-पूत बनाओ। जहाँ हो, उसमे आनन्द खोजो। अपने को विकसित करते जाओ, आनन्द खोजते जाओ। तुममे महेश है, शिव है। तुम्हारे राग-तन्त्र में सगीत भी है, क्रन्दन भी ही। स्वर-सयोजन है, स्वर-सहार भी है। सहार में कष्ट है, विपदा है, असन्तुलन है। अपने अन्दर और वाहर के संगीत को सुनो—उसे रचो कि तुम सगीतमय बन जाओ, दूसरो को बना दो। जीवन का और तुम्हारा सत्य यही है—सरिता की कल-कल, रागो की मध्यम द्रुतलय का भीना-भीना संगीत। रचो, जितना रच सकते हो, अपने अन्तः-वाह्य को रचो क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त कोई रचियता नही। तुम्हारी स्वतन्त्रता तुम्हारी वृद्धि है, तुम्हारी परतन्त्रता तुम्हारा क्षरण। सर्व परवश दु ख सर्वमात्मवश सुखम्।

लोग कहते है कि सन्यासी के इस तरह के वचन सबको वशीभूत कर लेते थे और तब कुछ लोग ऐसे भी होते, जो इन्द्रावाई के भाग्य को सराहते। नर्तकी ने सन्यासी को मोहा या सन्यासी ने नर्तकी को।

मुझे सिर्फ एक वृद्ध मिले जिन्होंने कहा—यह मिलन सगीत का सगीत से था, सौदर्य का सौदर्य से था, लीला का लीला से था।

वह वृद्ध संन्यासी के प्रशसक थे। स्वय ज्ञाता और गम्भीर विद्वान,

इन्द्राबाई का नृत्य और सगीत दिन-दिन शोहरत पाता गया। उसके नृत्य मे वासना का आकर्षण नही रहा, मनोरागों का सौदर्य उभर आया। उसका सगीत लोगो के मर्म मे उत्सव-सा जगाने लगा।

इन्द्राबाई का कहना था—यह सब मेरे स्वामी सन्यासी की देन है।

उन्ही वृद्ध ने बताया था कि नीना के जन्म के बाद इन्द्राबाई ने सन्यासी से पूछा था—स्वामी, मै नर्तकी का कार्य छोड़ दूँ? स्वामी ने उत्तर दिया था—नही इन्द्रा, तुम्हारी रचनाशीलता अधूरी रह जायेगी। अपने को पूर्ण करो। लोगो को उनके राग-ससार से परिचित कराओ। उनके मनोरागों का आनन्द का स्रोत दिखाओ। वह नित्य-प्रति की सौदागरी जिंदगी मे जड़ हो गया है।

इन्द्राबाई ने यही प्रश्न मीना के जन्म के बाद सन्यासी से किया था।

वृद्ध ने बताया—संन्यासी का वही उत्तर था। इन्द्राबाई तुम अब गन्तव्य नही माध्यम हो। अपनी सिद्धियों को नीना-मीना में फलित करो।

संन्यासी के आदेश इन्द्राबाई की उपलब्धियो के प्रेरक बनते गये। नीना-मीना श्रेष्ठ नर्तकियाँ और गायिकाए बन गईं।

इन्द्राबाई ने पचास की उम्र तक पहुँचकर फिर वही सवाल सन्यासी स्वामी के सामने रखा था।

वृद्ध ने बताया—संन्यासी ने मेरी उपस्थिति मे इन्द्राबाई से कहा था—हाँ, अब तुम सन्यास ले सकती हो। नीना और मीना को अपना जीवन जीने दो। स्वतन्त्र कर दो उन्हें। लोग कहते हैं वह दृश्य भी कितना मर्मस्पर्शी था, जब नर्तकी-गायिका इन्द्राबाई ने सन्यास के लिए शहर छोड़ा था। उसकी यात्रा उस लाल इमारत से स्टेशन तक क्या निकली थी, आधा शहर टूट पड़ा था। आदमी ही आदमी, औरतें ही औरतें।

इन्द्राबाई फिर कभी शहर नही लौटी। सन्यासी भी कभी शहर नही आये। जैसे दोनो का जीवन किंवदन्ती बनकर रह गया। अब तो सिर्फ जिक्र-जिक्र रह गया। नीना और मीना यद्यपि बहुत अच्छी गायिका

और नर्तकी रही, लेकिन अपनी मां की श्रेष्ठता, उसकी कला, उसका नाम नही पा सकी।

लाल कोठी की कहानी अब भी चलती आ रही है। इन्द्राबाई की कहानी लोककथा की तरह कही-सुनी जाती है। नीना और मीना की जिन्दगी इतनी जग-जाहिर नही है। लेकिन मैंने नीना और मीना के बारे में जितनी जानकारी प्राप्त की, उसके आधार पर उनकी जिन्दगी की हल्की-सी रूप-रेखा खिंच सकती है।

नीना बड़ी बहिन। मीना छोटी। नीना दरम्यानी कद की। रग गेंहुए से कुछ खुला हुआ। मीना एक गोरी, पतली, अच्छी उठान की।

नीना के चेहरे का उसका आकर्षण—बड़ी-बड़ी आँखें, फूला-फूला चेहरा और मोटे होंठ। बस नाक थोड़ी-सी फैली थी। बाल मीना की तरह घने थे, लेकिन उसकी तरह मुलायम और पीठ तक नही लहराते थे।

मीना के बाल लहराते थे, पूरी पीठ पर छा जाते थे। उसकी आँखें मुस्कराती थी और जब वह स्वाभाविकता मे होती या किसी को देख-कर बात करती होती, तब वे आँखें नशीली हो जाती थी। मीना का नक्श तीखा था, जिसकी स्पष्ट नाक चेहरे को आधे-आधे मे बाँटती हुई भी जैसे किसी पीपल के पत्ते की नस की तरह उभरी रहती थी, और मीना के होठ सन्तरे की फाँक-से पतले और रस-भरे थे।

दोनों के प्रशसक अब भी मिल जाते है लेकिन अब वे अधेड़ हो चुके हैं। कहते हुए हिचकते हैं कि कभी वे उनके चाहने वाले रहे थे। ऐसों की तलाश करनी पड़ी तब कही मीना और नीना के सम्बन्ध में पता लग सका। जिसमे नीना तो अभी जिन्दा है—मीना के बारे में जानकारी लेने के लिये खासी खोज करनी पड़ी। इसकी एक वजह और थी। नीना काफी जोशीली, बाहरी, व्यावहारिक और अपने पेशे से पैसा कूटने वाली रही; मीना शुरू से गम्भीर, अन्तर्मुखी, पेशे के मुताबिक कम चालाक और किसी हद तक अतिरिक्त भावुक भी। नीना ने अपने पेशे को जीना चाहा, मीना जैसे उसे बस अपनाये रही, क्योंकि दूसरी

कोई राह नहीं थी।

मीना का गला नीना से ज्यादा सुरीला था। उसमे इंतिहा की मिठास और कोमलता थी, जो सीधे दिल को छूती थी। नीना में जो माँ से मिला था, वह इतना नहीं था कि बिना मेहनत और रियाज के स्तर ले सके। इसलिये नीना को मेहनत भी करनी होती थी और आने वालो की रुचियों के मुताबिक तैयारी भी करनी पड़ती थी। फिर वह यह भी चाहती थी कि दूर-दूर तक प्रोग्रामो मे बुलाई जाये ताकि कमाई अच्छी कर सके।

मीना मे यह भूख नही थी। नीना मीना को अपनी कीमत बढाने के लिये अपने साथ ले जाती थी, वरना मीना की रुचि सीमित थी। जब नीना अपने क्षेत्र मे जम गई तो उसने मीना को साथ ले जाना छोड दिया। मीना को ले जाने के मतलब थे अपने को हमेशा दूसरी सीढी पर रखना। दर्शक और श्रोता को तो नम्बर देने की आदत होती है। सर्वश्रेष्ठ कौन रही? दोयम कौन रही? तीसरे दर्जे पर कौन ठहरी?

कुछ लोग कहा करते है—चाहे से तो खुदाई भी मिल जाती है और इसकी पलट की कहावत है—बिना माँगे मोती मिल जाते है; माँगे भीख भी नहीं मिलती। नीना ने दौलत की खुदाई चाही, उसे हैसियत और हिसाब से खूब मिली। मीना ने प्रतिष्ठा नही माँगी, वह उसके पास आई। उसने चाहने वालों का जमघट नहीं माँगा, वह उमके पास ज्यादा बना रहता था।

नीना को इस पर सोचना पड़ा। कमाई के मामले मे वह चूक खाने, या लापरवाही बरतने को तैयार नही थी। एक कोठे वाली का भविष्य कितना खिसलता हुआ होता है, वह जानती थी। जवानी गई तो आधी कला बेमतलब हुई। आकर्षण गया, तो ग्राहक गये। इसलिये उसको जँचा कि दोनो को एक कोठी मे रहकर पेशा नही चलाना चाहिए। हालाँकि अपना-अपना काम, अपनी-अपनी कमाई खाना था, लेकिन यह तो साफ था कि यह पेशा हिस्सेदारी में नही चल सकता। नीना ने तरकीब से इस सवाल को उठाया, जिस तरफ मीना का ध्यान नही था। लेकिन

इसके साथ लाल कोठी की हिस्सेदारी भी आती थी, इन्द्राबाई हिस्सा-बाँट नही कर गई थी। हाँ, जेवर और जमा नकदी को दोनों में बराबर-बराबर कर गई थी। नीना ने पहले ऐसा मकान तय किया, जिसका मोहल्ला पेशे के हिसाब के लायक हो, फिर उसकी खरीद का मीजान बैठाया, जब सारी तैयारी कर ली, तब मीना के सामने योजना रखी। मीना समझती सब थी लेकिन उसने अपने को बड़े अजीब से ढंग मे ढाल रखा था। जैसा होता है, हो। अगर उसकी बहिन अपनी भलाई इसमें देखती है तो उसको मंजूर है। यह भी हो गया। दोनों बहिनें अलग-अलग हो गईं। लाल कोठी नीना के पास रही, जिसमें उसका डाक्टर बेटा क्लीनिक चला रहा है—काफी शोहरत और आमदनी के साथ।

मीना अलग हुई तो उसे बहुत-सी फिक्र की तरफ ध्यान देना पड़ा। नीना के पास थी तो कई तरह के बन्दोबस्तों से छूटी हुई थी, वे भी उसे करने पडे। उसे पेशा भी जारी रखना था, अपनी एहतियात भी रखनी थी और जैसाकि इस पेशे मे होता है, शरीफ ग्राहकों को भी बनाये रखना था, अपने प्रचारकों को भी और आडी पर उसकी सुरक्षा का सरअंजाम देने वालों को भी। पेशे की माँग और उसके स्वभाव के बीच जब-तब संघर्ष उठता था, पर उसे वह बिना ज्यादा भावुक हुए सम्भाल लेती थी।

मीना की अन्दरूनी कहानी पाने मे मुझे लम्बे अरसे तक इन्तजार करना पडा। सिर्फ मैंने इन्तजार नही किया, बल्कि उसके तीस बरस के बेटे रजनीशकात को दोस्त बनाया। समानान्तर दोस्ती—डाक्टर अमलेन्दु से, रजनीशकात से। अमलेन्दु की दोस्ती तो इतनी खतरे वाली नहीं थी, लेकिन रजनीशकात की दोस्ती मे मुझे कुछ बदनामियाँ भी लेनी पडी लेकिन यह बदनामियाँ ओछी थी और निराधार थी। बस फर्क इतना था, जो कि अक्सर आज की सोसायटी का रवैया है—खुला मारा जाता है, छिपा जीतता है। वास्तव में अलमेन्दु के मुकाबले मुझे रजनीशकात ज्यादा दर्द वाला, सच्चाई के वक्त सच्चा और किन्ही मायनों में बद से ज्यादा बदनाम शरीफ लगे। लेकिन फर्क तो बुनियादी था। नीना अपने मुद्दे में हर वक्त सतर्क, मीना सावधान होकर

असावधान। अमलेन्दु अपने मुद्दों में जबरदस्त, रजनीश अपनी नौकरी और काम मे हिसाबी होते हुए भी गैर हिसाबी कलाकार।

लोग कहते है कि मीना की जवानी को कितनों ही ने बाँटा हो लेकिन उसके नाम से जुड़े ठाकुर कुलपतिसिंह। वह महाराजाओं के वक्त में ऊंचे ओहदे पर थे, बाद मे पुलिस के महकमे मे आला अफसर रहे। अमलेन्दु को उन्ही का बेटा बताया जाता है। लेकिन बात तो वही है, नर्तकी का बेटा किसका ? सिर्फ माँ का ! बाप जो अक्सर उस तबके के होते है जिन की हैसियत का दबदबा होता है। वेश्या के बेटे तो वे फल होते हैं जो किसी ऊंचे दरख्त से टपकते हैं और नीचे बैठी किसी उपेक्षित औरत की गोद मे आ गिरते है। डाक्टर अमलेन्दु अपनी माँ का नाम बता सकता है, पिता के नाम का दावा नही कर सकता। मैंने तो सुना है कि कभी-कदास ठाकुर कुलपति सिंह क्लब मे आमने-सामने भी हो जाते हैं, लेकिन खुला राज पोशीदा रहता है। डाक्टर अमलेन्दु बराबरी का दर्जा हासिल कर लेने की परोक्ष मार देता है, ढलती उमर के ठाकुर को।

लेकिन रजनीश ऐसा नही कर पाता। उसकी कड़ुवाहट उसकी जिन्दगी मे घुलकर उसे रास्ते-कुरास्ते चलाती रहती है। वह सम्भलते हुए भी सम्भल नही पाता। केन्द्रित होते-होते ऐसा बिखर जाता कि अपने काबू में नही रह पाता। अमलेन्दु की माँ तो अब भी सरपरस्ती लिए हुए है अपने बेटे की। रजनीश तो इस मामले मे भी बदनसीब ही रहा। *मीना तो बिना उम्र तय किये चल दी।*

तकरीबन आठ-सात साल हो गये रजनीश मेरे घर आया था। उस के हाथ मे गिटार था। कधे पर थैला टँगा था। उसने आते ही कहा—मैंने आज मीरा के भजन की नई धुन तैयार की है तुम्हे सुनाने आ गया।

उसके शाम के वक्त आने का मतलब होता था, पहले शराब पीना, फिर कुछ भी करना, जो तय हो।

थैले मे से उसने बोतल निकाली, जो नमकीन लाया था उसे रखा।

खाना यही खा लेना। —मैंने उससे कहा, यानी पूछा।

उसने कहा—खा लूंगा। भाभी जी से मेरा नमस्कार कहना।

मैंने अन्दर बताया कि रजनीशकान्त आया है।

मेरी लड़की और मँझले लडके को छुटपन से गाने का शौक है। लड़की की पिछले साल शादी की है। रजनीश ने डेढ़ सौ रुपये उसको दिये थे। लड़का अब अट्ठारह साल का है। हायर सेकेण्डरी में पढ़ रहा है।

उस दिन रजनीश किस मूड में था, शुरू में नहीं पता चल सका। वैसे उसकी खुशी या उदासी उसके चेहरे पर साफ झलकती रहती है।

मैंने अलमारी में से गिलास निकालकर रखे। उसने दो पेग बनाए और पीना शुरू कर दिया। मेरे साथ वह अक्सर पीने में नियन्त्रण रखता था। वह जानता था, न यह खुद ज्यादा पियेगा, न पीने देगा।

सुरूर आते ही उसने कहना शुरू किया—मीरा के इस भजन को महीने-भर से लिए बैठा हूँ। अनीता बैनर्जी को तैयार करवाना था, लेकिन धुन नहीं बना सका तो उसके यहाँ गया नहीं, अब कल जाऊँगा।

मुझे पता था कि अनीता बैनर्जी रजनीश की बनाई धुन रेडियो के लिए गाती थी। रजनीश उसकी आवाज की तारीफ करता था, जो वास्तव में अच्छी थी। वह कहता था, वह इसलिए अनीता को अपनी बनाई धुन देता है, क्योंकि वह उसको भावसहित गाती है। एक-एक स्वर के उतार-चढाव, कितनी आवाज और गति किसी शब्द या स्वर को दी जाये, इसकी पहचान अनीता को है, जिसमें भावों का स्पर्श देकर वह धुन और गीत को एक सजीव चीज बना देती है।

मैं जानता हूँ रजनीश इस मामले में बड़ा चूजी है। वह किसी को गीत गवा रहा है, अगर किसी स्वर या बोल पर चाहा गया अलाप, या मोड़ नहीं लिया गया तो भड़क पड़ेगा, गाने हो या मजाक करते हो! सारा जाता है यहाँ से—यहाँ से और वह अपने दिल पर हाथ मारेगा। नीरा ने रोज से ज्यादा पी ली थी और मुझे यह ताकीद दे दी आज उसको नहीं रोकूँ।

में आ गये । मैंने इशारा किया कि वह खामोशी से बिना आहट किये बैठ जायें ।

भजन की शुरुआत से ही मैं समझ गया कि धुन किस मूड में बनाई गई है और उसने क्यों पीने की छूट माँगी । इस कदर दर्द, इस कदर बारीकी का निभाव कि मैं सुनते-सुनते खुद भाव में डूबने लगा । मेरी खुद की आंखें मुंदने लगी । वह जैसे अपने को घोलकर गा रहा था । अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उसकी हिचकियां उठ आईं । मेरी आंख खुल गई । मैंने देखा वह रो रहा है ।

मेरी पत्नी कब रसोई छोड़कर बैठक में आ गई थी मुझे नहीं पता लगा ।

मैंने टोका—रजनीश, क्या हुआ ?

कुछ नही ! भजन के भाव मे बह गया था ।

बहुत अच्छा भजन है रजनीश जी ! पत्नी ने तारीफ की ।

चाचाजी, हमें भी सिखा दीजिये, इस भजन को । मेरी लड़की ने कहा ।

सिखाऊँगा बेटी । जरूर सिखाऊंगा ।

हमें भी चाचा जी ।—बेटा बोला ।

तुम्हें भी सिखाऊँगा ।—उसने कहा । फिर वह चुप हो गया ।

मैं समझ गया कि अब वह अकेलापन चाह रहा है । बेकली उसके चेहरे पर थी ।

मैंने सबसे कहा—अब तुम लोग अन्दर जाओ ।

सब चले गये । उनके जाते ही रजनीश फिर रोने लगा ।

रजनीशकान्त के साथ ऐसा अनुभव मुझे पहले कभी नहीं हुआ । वह भावुक है, हर तरह से मक्खन की तरह पिघलने वाला है, लेकिन इस सीमा तक दर्द से भरा हुआ है, यह मुझे उसी दिन पता लगा था । आठ साल पहले का वह दिन कई तरह से मेरे लिए न भुला पाने वाला दिन बन गया । मैं जान पाया कि बाहर का यह ओवरसियर कितने दर्द को अपने में समाये बैठा है । दर्द का वह सोत उस दिन अपने कगार छोड़ रहा था । रजनीशकान्त का असली घाव उसकी माँ मीना थी, जिसको वह अजहद प्यार करता था । जो उसके लिए किसी भवानी दुर्गा से कम

नही थी। जिसकी उसने भरसक सेवा की, अपनी ताकत से ज्यादा इलाज करवाया। लेकिन वह उस माँ को बचा नही सका। टी० बी० लगी तो उसकी माँ को ले जाकर मानी।

मीना के बारे मे जिस राज को मैं जानना चाहता था, वह उस दिन रजनीशकान्त के मुह से खुद-ब-खुद निकला, पूरी कहानी की तरह निकलता गया। जैसे, वह अपनी माँ के साथ हो गया हो और उसी के साथ अपने होश सम्भालने से मृत्यु तक जी रहा हो। वह अपने को भुला रहा था और माँ को जिन्दा कर रहा था। मैं एक तरह से संतुष्ट हो रहा कि मेरी तलाश पूरी होने को आ रही थी। यह स्वार्थ ही तो है। लेकिन उस वक्त का स्वार्थ अब मेरी अनुभूति बनकर मेरे निज के दर्द मे मिल रहा है—इसे कैसे बताऊँ।

रजनीशकान्त ने बताया कि उसकी माँ टी० बी० मे मरी। मुझे याद आया कि मेरी माता जी भी कैंसर की रोगी होकर मरी थी। रजनीशकान्त ने बताया कि उसकी माँ अपने उस पति की याद मे मरी जिसे वह पति नही कह सकती थी। मुझे याद आया कि मेरी माँ का दर्द जहाँ पति को न देखने का था, वहाँ अपने बच्चो को भी न देख पाने का था। मेरी तीसरी बहिन के पैदा होने पर माँ की आख की रोशनी कम हुई। धीरे-धीरे कम होती गई। फिर तीन-चार सालों मे माँ बिल्कुल अधी हो गई।

कैसी घुटन होती है जब खुली दुनिया बन्द हो जाये, फिर आवाज और स्पर्श और गंध भर रह जाये। रजनीशकान्त ने बताया कि उसकी माँ ने अपनी दुनिया को अपने-आप बन्द कर लिया था। कितना उल्टा हुआ—रजनीश ने मुझसे कहा—कि जिसका पेशा अविश्वास करने का हो विश्वास करके ठगी जाये, जिसे किसी औरत पर विश्वास करना चाहिए वह दगा दे। रजनीश ने बताया उसकी माँ मीरा थी, जिसने पति के बिछोह को विष बना लिया और उसी में अन्दर-अन्दर कटती रही। वह चाहती तो ठोकर लगाकर, किसी दूसरे को फंसा लेती। पर वह मीरा होती गई।

सच कहता हूँ मुझे उस बाप से सख्त नफरत है, जिसने मेरी माँ को फुसलाया, इज्जतदार जिन्दगी देने की कसम खाई, लेकिन दौलत आते ही

बदल गया।

मेरा बाप मेरी माँ के बढे साजिन्दे का बेटा था। वह कभी-कभी माँ के पास आया करता था और दुनिया-भर की बातें बनाया करता था। वह किसी दूसरे शहर मे रहता था। किसी सेठ के यहाँ कपड़े की (सेल्स-मैन शिप) करता था। वह चाहता था कि खुद का व्यापार करे, लेकिन इतना रुपया नही था कि अपना काम शुरू कर सके।

मीना, तब जवान थी, दयालु किस्म की थी। उसने कहा कि अगर मीना अपनी दौलत लगाए तो वह अपने अनुभव से व्यापार जमा सकता है। हिस्सेदारी मीना और उसकी हो सकती है। व्यापार की हिस्सेदारी की बात करते-करते उसने मीना से यह भी कहा कि धन कमा लेने के बाद वह उससे शादी करेगा, फिर न उसका बाप साजिंदा रहेगा, न मीना को इस पेशे को चलाना जरूरी होगा।

मीना ने अपने बूढे साजिन्दे को बता दिया था कि उसका बेटा यह चाहता है और यह कि क्या उसे उस पर विश्वास करना चाहिए?

साजिंदे ने सचेत करते हुए कहा था—बेटी, मेरे लिए तुम भी उसी की तरह हो, लेकिन यह मामला रुपये का है और मैं तुम्हे बेटी और मालकिन दोनो तरह से मानता हूँ, इसलिए तुम जो भी तय करना, सोच-समझ कर करना।

मेरी माँ ने बहुत सोचा अपने पर, भविष्य पर, आखिर मे वह इस नतीजे पर पहुँची थी कि उसे प्रस्ताव मान लेना चाहिए।

रजनीशकान्त ने माँ की कहानी बताते हुए एक सवाल मेरी तरफ फेंका। मेरी माँ या मैं नर्तकी, वेश्या की औलाद सही। हमारे खून मे धोखा और हृदयहीनता अगर आ जाये, या हो, तो होनी ही चाहिए, लेकिन उन आदमियो को वेश्या क्यों नही माना जाता जो न ईमान से साबुत होते है, न देह से, न व्यवहार से?

उसने मेरे उत्तर का इन्तजार किये बगैर अपनी माँ की ईमानदारी और प्रेम की सच्चाई को बताना शुरू किया।

साजिन्दा का बेटा मेरी माँ के रुपये लेकर धन्धे मे खडा हुआ। उस ने एक तरह से मेरी माँ से शादी भी कर ली। अपने दो के बीच मे मुझे

भी ले आया। और जब उसके दिन पलटे तो माँ से आख बदल ली। उस हरामजादे ने माँ को वेश्या की बेटी कह-कह कर तासना शुरू किया, यहाँ तक की मेरी माँ जैसी सीधी औरत को मारने-पीटने लगा। उसने अपने बाप के सफेद बालों में मिट्टी डाल दी, जब वह उसे समझाने गये।

वह ऐयाश अपने असली रंग में आ चुका था। उसे लेकर मेरी मौसी से लड़ ली थी—जिसने उस वक्त मेरी माँ का खूब मजाक बनाया जब मेरी माँ को लौटकर इसी शहर में आना पड़ा अपने मकान में। उस कमीने ने दूसरी शादी कर ली।

यही धक्का था जो मेरी माँ को ऐसी बीमारी तक ले गया, जो एक बार लगी तो छूटी नही।

कभी की मीना अब नाचना-गाना छोड़ चुकी थी। वह मेरी नानी की तरह संन्यास ले लेती अगर उसकी गोद में मैं नही होता।

मैंने माँ के पास साजिन्दे बाबा को देखा जो जब तक जिये माँ की रखवाली करते रहे। माँ मुझे पाल रही थी और जो कुछ बचा हुआ था, उससे जिन्दगी बसर कर रही थी।

क्या वह चाहती तो फिर अपनी कला से धन और शोहरत नहीं पा सकती थी? क्या वह इतना बड़ा धोखा पाकर आने वालों को नहीं ठग सकती थी, चाहे उनकी गृहस्थी का कुछ भी हाल होता?

लेकिन वह तो मीरा बनती गई। बस, देवी की भक्ति करना और मुझे देखकर जीना।

मेरी मौसी मीना ने एक बार उसे फिर समझना चाहा था, लेकिन उसने पेशे को अपनाने मे असमर्थता जाहिर कर दी थी। किसी को दो-बारा अपनाने से भी इन्कार कर दिया था।

उसका कहना था—मैं तो बरबाद हो गई, किन्ही दूसरो को क्यो बरबाद करूँ।

क्या यह गन्दे खून के संस्कार थे? नर्तकियों को तो गन्दे खून की औलाद माना जाता है। मेरी मौसी मीना दुनियादार थी, वह बनती गई। मेरी माँ सब कुछ रखते हुए भी ऐसी राह पर चल दी जो उन्हें हर तरह खत्म कर गयी।

सिवाय मेरे किसने जाना कि मीना क्या थी ? वह मेरे लिये अभिशप्त मीरा थी, दूसरो के लिये घमंडी नर्स थी। मेरे लिये वह शरीफो में से शरीफ और सच्फाक नारी थी। दूसरो के लिये पाखडी। किसी तरह भी तो यह दुनिया नही जीने देती।

रजनीशकान्त अब जैसे हलका हो रहा था। उसका सुरूर भी कम हो गया था। उसने भजन की टेक की तरह अपना आरम्भ सूत्र पकड़ा।

मुझे मीरा के भजन बहुत अच्छे लगते है। मुझे मीरा के भजनो में अपनी माँ का दर्द दीखता है, उसकी न खत्म होने वाली पीड़ा।

मैं जब काफी भजनो की धुन बना लूंगा, तब मीरा पर फिल्म बनाऊँगा, छोटी फिल्म। उसके भजनो के भाव-चित्रों की फिल्म।

वह मेरी माँ की फिल्म होगी। उसके जीवन की।

रजनीशकान्त फिर भावों और कल्पना मे खो गया था। मै मीना के जीवन की झलकी पा चुका था, लेकिन एक वह व्यक्ति भी मेरी तलाश मे जुड़ गया था, जिसने मीना जैसी मीरा की जिन्दगी बरबाद की पर लौटकर देखना नही चाहा।

रजनीश उस दिन अपने घर नही गया। यह आगे बता सकूंगा कि रजनीशकान्त की जिन्दगी मे दूसरा घाव कौन-सा है जो उसको छिन्न-भिन्न किये हुए है।

लेकिन मैं यह भी सोचता हूँ कि मैं उपन्यास लिख रहा हूँ या अखबारनवीस या गुप्तचर विभाग का आदमी हो गया हूँ कि जहाँ जरा-सा सकेत मिला कि उस तरफ पहुँचा।

आठ साल पहले मीना की गुप्त जिन्दगी का राज रजनीश ने खोला था। और मैंने तभी योजना बना ली थी कि साजिन्दे के उस बेटे को जरूर देखूंगा। जिसके बाप ने तो मीना को निभाया, वह उसकी दौलत से आदमी बनकर भी हैवान हो गया।

मुझे लगता है, मैं भी कम भावुक नही हूँ। आज के वक्त मे अच्छाई और बुराई की कसौटी पर जिन्दगी या घटना को परखना क्या असंगत और बेमानी नही है ? जिन्दगी को, उसकी हर घटना को, घटना की मियाद को नफे और नुकसान की कसौटी पर परखा जाना चाहिये।

इन्द्राबाई, नीनाबाई, मीनाबाई या अमलेन्दु या रजनीशकान्त की जिन्दगी पर क्यों लिखा जाना चाहिये ? फिर इतनी खोज-खबर और सत्यता के साथ क्यों ?

पर मैं बताऊंगा कि कौन-सी ट्रेजेडी अचानक कहर की तरह गिरी कि जिसने मुझे जिन्दा जिन्दगियों पर लिखने के लिये बाध्य किया।

मेरी मां और मीना के दुःख में कितना साम्य था। मीना की खुशी उसके वाहियात पति ने लूटी तो मेरी मां की खुशियां उनकी आंख की ज्योति ने लूट ली।

कैसी थी वह घुटन, जो आधी जिन्दगी अपने बच्चों की आवाज सुनकर; उन्हें छूकर बीती। लेकिन वह मेरी मां थी जो हर शाम पिता जी के दफ्तर से लौटकर आने पर उनके सामने टटोलती जाती और फिर किसी भी बेटी को पुकारकर कहती—चाय ला, तेरे पिताजी दफ्तर से आ गये हैं।

वह दस-पन्द्रह मिनट पिता से घर की बात करती फिर टटोलती-टटोलती रसोई में चली जाती।

रात मे वे पिताजी के पैर दाबती।

मीना ने रजनीशकान्त की शादी देखी, मेरी मां ने मेरी शादी की धूम सुनी। मुझे (अपने बेटे को) और आने वाली बहू को छू-छूकर महसूस किया। बहू का काल्पनिक चित्र सुन-सुनकर अपने मस्तिष्क मे खड़ा किया।

लेकिन भावना के हिस्सों की क्षति जिस छीजन को अन्दर-अन्दर बढ़ाती रहती है, वह जी और जिस्म पर ही तो बीतती है।

मीना घुटते-घुटते टी. बी. की मरीज हुई, मेरी मां कैंसर की मरीज। क्या फ़र्क था ?

एक छोटी-सी घटना का सहारा लेकर मैंने रजनीशकान्त की भावुकता, उसकी संगीत की लगन को दिखाना चाहा है। इससे भी ज्यादा उस दर्द को बताने की कोशिश की है जो शायद उसके व्यक्तित्व के बिखराव की वजह रहा या फिर कई तरह से संयोजक भी रहा।

और उसकी मां की जानकारी देते-देते मैं अपनी उस मां की विव-

शता को भी दे गया, जिसने खुली आँखों भी अपनी गृहस्थी को स्नेह दिया और आँखों की रोशनी खो जाने के बाद भी किसी तरह अपनी जिन्दगी को वहलावों में डालती रही। और चाहे मीना रही हो या मेरी माँ, वैसी परिस्थितियों मे कर भी क्या सकती थी ? लेकिन मुझे अपनी या माँ की वात नही करनी है। मीनाबाई की जिन्दगी की कुछ घटनाएँ मेरे पास है, जिन्हें मुझे लिखना चाहिये।

मीना ने अपनी जिन्दगी को कितनी ही सीधी रेखा देनी चाही हो, लेकिन ऐसा हो थोड़े ही पाता है। लोग अपनी तरह से देखते है और अपने हिसाव से दूसरे को नापते हैं। फिर मीना तो नाचने वाली तवायफ थी, इसलिए उसे तो नाचने वाली ही रहना चाहिये था।

उसके आदमी ने जव उसको धोखा दिया तो लोगो ने फिर चाहा कि वह उनकी तफरीह और खेलने-खिलाने की चीज बन जाये। कुछ ऐसे भी थे जो इकहरा अधिकार रखकर उसको अघोषित पत्नी भी वनाने का प्रस्ताव रख रहे थे। वह उसका हर तरह का खर्चा सहने को तैयार थे वशर्ते कि वह उनकी वनी रहे। मीना वन भी सकती थी लेकिन वह मीना नहीं थी ना ! मीना तो किसी से बँधी ही नही, वेटा पाने के बाद ठाकुर को भी रास्ता बता दिया।

मीना की गोद में रजनीशकान्त आ चुका था। उसके पास वह ध्वस्त विश्वास था, जिसने किसी भी तरह के शादी के जीवन के लिये उसमें विकर्षण ठहरा दिया था। वह क्यो और किसलिए, इस शरीर को दूसरों को दे और अपने लिये सुविधा जमा करे ? दूसरी तरह से भी तो जिन्दगी जी जा सकती है।

लोग मीना के फेरे लगा रहे थे, उसे वहलाने-फुसलाने के लिये जाल मरका रहे थे, वह दूसरी तरफ वढ़ रही थी। अपनी तरफ। कितने नीच है लोग कि जब उनकी चालें असफल हो गई तो एक अफवाह चलती कर दी। मीना अपने साजिन्दे की हो गई है। जब यह अफवाह मीना तक पहुँची तो वह तिलमिलाती हुई आई।

इन्द्रावाई की वेटियों की क्या यह हैसियत उतर आई कि वह साजिन्दे की रखैल बने ? क्या दूसरे अमीरों का शहर में टोटा आ गया है ? मीना

ने अपने सोचने के हिसाव से उसे बड़ी बहिन की नसीहत का बड़ा भापण दे डाला था, जिसमें असली मुद्दा था कि अभी भी कुछ नही बिगड़ा है। वह पेशा शुरू कर दे और माँ के नाम का फायदा उठाये, जैसे वह उठा रही है। उमर निकल गई तो लेवा-देवा कोई नही मिलेगा।

मीना चुपचाप सुनती रही थी। उसने साजिन्दे से जोडे गये रिश्ते का विरोध भी नही किया था।

नीना भडकती आई थी, भडकती चली गई। उसे मीना ने हाँ मे जवाव नही दिया। वह जान रही थी कि उसकी राय मीना पर असर करने के वजाए जैसे वाहर-वाहर गिर रही थी।

वह अन्तिम निर्णय सुनाकर चली गई थी---वहिन की मुहव्वत खीच लाई थी, अब वह कुछ भी करे उसे मतलव नही। उसका रिश्ता खत्म!

नीना के जाने के बाद मीना सोचती रही थी कि क्या वास्तव मे नीना ने बहुत पहले इस रिश्ते को अपने फायदे के नीचे नहीं दवा लिया था। क्या नीना ने उसे हर तरह से अपने लिये इस्तेमाल नही किया था और जव उसका पेशा सधने लगा था उसे उसने माँ की उस कोठी से भी वाहर कर दिया था, जिसका नाम और हैसियत का वास्ता लेकर वह दलील दे रही थी।

मीना ने जव अपने पति के बाप, उस सजिन्दे को नीना की नाराजगी बताई थी, तब उसने एक साथ दो प्रस्ताव रख दिये थे। वह सुझाव थे, जिसमें से एक को मीना को अपनाना था।

मीनावाई, अगर तुम चाहो तो अपनी वहिन का सुझाया हुआ रास्ता ले सकती हो। तव मैं तुम्हारा साजिन्दा रहूँगा। तुम्हारे पेशे को अपने फन से ज्यादा-से-ज्यादा वढाने की कोशिश करूँगा।

अगर तुम पेशे को नही अपनाना चाहती हो तो मै अपने वेटे की तरफ से की गई नाइन्साफी का कर्जा चुकाऊँगा। आखिर तुम्हारी गोद का बेटा मेरा पोता ही तो है।

जैसा चाहो करो, वैसा मैं कर लूंगा।

उसके बाद उसने निर्णय मीना पर छोड़ दिया था। जब [illegible] साफ बतला दिया था कि वह न पेशा अपनायेगी, न किसी से

रखना चाहेगी तब साजिन्दे श्वसुर और बाबा का रास्ता तकरीबन तय हो गया था।

मीना कभी-कभी परेशान हो जाती थी जब उसकी जवानी को साजिन्दे बुजुर्ग से जोडा जाता था जिनकी कि वह इज्जत करती थी और किसी हद तक जिन्हें अपना सरपरस्त मानने लगी थी।

साजिन्दे बुजुर्ग का कहना था—मीना, क्यों परेशान होती हो ? हमे अपनी तरह चलना है या दूसरों की खीची लकीरो पर ? मत कहो कि हमारे बीच मे क्या है, जो है उससे किसी को क्या मतलब ?

वह बडी टीस के साथ कहते—हम लोग तो वैसे ही बेगैरत और गिरे हुए है, लेकिन वे कैसे हैं जो बालों की सफेदी और बेटी की उम्र का भी ख्याल नही रखते ?

इससे पहले कि मीना कोई टिप्पणी करे या कुछ उबाल निकाले, वह खुद ही कहते—उन्होने नाच देखते वक्त, या खूबसूरती पर ललचाते, टिप-टिपाते, रुपये थमाते, कब सोचा कि वे किस उमर के है !

मीना किसी सोच मे पड जाती। उसके साजिन्दे बुजुर्ग कडवाहट से कहते—जब हम अलग हैं, अदना है, तो उनके कहे का क्या ख्याल करे जो ऊपर से कुछ और अन्दर से दोगले है।

'दोगले' पर वह जोर देते और बडे इत्मीनान से कहते—इस अफवाह मे भी फायदा है। मैं तो कहता हूँ, हाँ, है। वही रिश्ता है जो तुम कहते हो। फिर क्यो राल टपकाते हो ! कम्बख्तों, किसी के दिल किसी के अन्दर भी झाँकने की हिम्मत करो। न तुम्हे उसमें ऐसा काँच मिले कि तुम्हारी बदसूरत शक्ल तुम्हे चिढाने लगे तो कहना। अरे ! तुम्हारा अक्स तुम्हारे मुंह पर पीकने लगेगा। थूक की पिचकारी छोडने लगेगा।

साजिन्दे बुजुर्ग इतना कहकर जैसे भाप निकाल चुके होते थे। फिर उनका स्नेह मीना पर उमड़ता—ज्यादा मत सोचा कर मीना बेटी ! इतना चुप भी मत रहाकर ! गुस्सा आया करे तो बक लिया कर। झुंझलाहट आया करे तो मुझ पर निकाल लिया कर। मानता हूँ उस हरामी ने तेरे साथ दगा किया है। उसने तुझ जैसी हीरा लडकी को सताया है। अगर खुदा या ईश्वर कोई चीज है तो उसका भी चैन इसी तरह से छिनेगा

जैसे उस हरामी ने तेरा छीना है। पता नही किस बदजात का खून उसकी नसों में है। वह गाली किस पर पड़ रही थी, उन्हें यह होश नही रहता।

साजिन्दे बुजुर्ग को मीना को ढाढस देते हुए यह भी ख्याल नही रहता कि वह अपनी बीवी को बदचलन साबित कर रहे है। हरामी तो ऐसी ही किसी औलाद को कहा जाता है। वह गुस्सा, झिड़की, गाली, शिकायत, शिकवे-नाले सब सहने को तैयार थे, बशर्ते कि मीना ठीक रहे। वह अपने सोच और चुप्पी के घातक दायरे से बाहर आये।

मीना को उनसे तसल्ली मिलती थी, जीते रहने का खिंचाव भी महसूस होता था, लेकिन वह उस हादसे से नही छूट पाई थी, जिसकी छाया रह-रहकर उस पर याद की शक्ल में पड़ उठती थी। उससे बचने का तरीक़ा मिला था—उसे पूजा और रजनीशकान्त पर केन्द्रित हो जाना। वह होती गई।

रजनीश जैसे-जैसे बडा होता गया, मीना की दोनों लगन बढ़ती गईं। रजनीशकान्त बताता है कि उसे होश सम्भालने के बाद माँ के दो ही रूप मिले—पुजारिन का या फिर लाड करने वाली माँ का। वह कहता है, मैंने उसके मुँह से भजन सुने। उनकी पूजा की आलमारी में भगवती दुर्गा की सिंहवाहिनी तस्वीर थी तो कृष्ण की भी तस्वीर थी। मीरा की तस्वीर उनके कमरे में थी।

रजनीश ने बताया कि उसकी माँ अजीब तरह के भावों मे वहा करती थी—जब पूजा करती होती थी। उसने उन्हे गाते-गाते रोते भी देखा है। धीरे-धीरे स्वतः आँसू बहते। फिर स्वर काँपते, फिर हिचकी भर-भरके रोती।

वह उसके पास खड़ा हो जाता था और देखता रहता था—सुनता रहता था और देखता रहता था। स्वरों को, दर्द को, मिठास को, बेचैनी को जज्ब करता रहता था और तब वह तय करता रहा था कि वह भी माँ की तरह ही सुरीला गायक बनेगा। वह माँ की तरह ही भावो में डुबाने-उतराने वाला संगीत रचेगा और बड़े होते-होते उसके दिमाग में कही उसकी खुद की एक छवि खड़ी होने लगी थी—किसी दिन फिल्मो

के म्यूजिक डायरेक्टर बनने की। इसी छवि ने उसे प्रेरित किये रखा कि वह माँ के साथ, या अकेला संगीत का रियाज करता रहे। उसे कभी फिल्मी म्यूजिक डायरेक्टर बनना था। इसलिये उसने अलग-अलग संगीत के यन्त्रों को बजाना भी सीखा—तबला, हारमोनियम, वायलेन, गिटार और बांसुरी। और इस दोहरे काम में वह आश्चर्यजनक तेजी से सफलता हासिल करता गया, इसमें कोई शक नहीं कि इसमें उसके साजिन्दे बाबा का हाथ भी था।

बड़े दोनो हो रहे थे—अमलेन्दु और रजनीशकान्त, लेकिन अलग-अलग माहौल मे। नीना अपनी कला को खरीद की चीज बनाकर दाम और नाम कमा रही थी। मीना ने गुमनामी अख्त्यार कर ली थी। क्या करना है उसे अब ? और किसके लिए ?

मै नही मान पाता कि मीना ने अपने कलाकार को मार लिया था। रजनीश कहता है वह पूजा के अलावा न कभी साज़ उठाती थी न रियाज करती थी। उनके घुघरू उनकी पूजा की अलमारी मे रखे रहते थे—जब उनको रौ आती थी तो घुघरू बांध वह तन्मय होकर नाचने लगती थी—नाचती चली जाती थी।

मैंने रजनीशकान्त मे एक सवाल किया—क्या यह उनमे के कलाकार का जीवित होना नही होता था ?

रजनीश कहता—यह भक्ति का जीवित होना था, कला का नहीं।

क्या वह भजनों के सिवाय और कभी कुछ नही गाती थी ?—मैंने रजनीश से पूछा था।

उसने जवाब दिया था कि वह गाती थी, चुनिन्दा गजल भी अकेले मे गाती थी, पक्के राग भी गाती थी लेकिन ऐसे जैसे खुद के लिए गा रही हों और अपने को ही सुना रही हों।

लेकिन वास्तव मे तुम्हारे पास मे जो मा की छवि है वह मीरा की ही है। इसलिए अपनी माँ के उस कलापक्ष पर तुम्हारा ध्यान नही जाता। मैंने रजनीश को उसकी आंशिक अति की स्वीकृति बताई।

वह उस पक्ष को तरजीह नही दे पाता था, बल्कि शायद वह देना नही चाहता था। उसकी नजर में माँ का मीरा का रूप ही शुद्ध रूप था। पर उसने एक घटना बताई जिसे सुनकर मुझे आश्चर्य भी हुआ और मीनाबाई के लिये इज्जत भी बढी। लेकिन वह घटना कितनी-कितनी मिश्रित प्रतिक्रियाओं को जतला रही थी, उस पर मुझे सोचने पर पता लगा। और अब जो उस घटना को लिखने जा रहा हूँ तो वह कई दिशाओं की तरफ टार्च-सा घेरा फेंक रही है।

रजनीशकान्त ने उसका जिक्र बडे विस्तृत ढग से किया, क्योकि उसमें वह खुद केन्द्र था। वह क्या था, उसके सपने को वास्तविकता मे बदलने की गुजाइश थी।

उसकी उम्र होगी तकरीबन तेईस-चौबीस साल की। उसने ओवर-सियरी का कोर्स कर लिया था और नौकरी मे भी आ गया था—सरकारी नौकरी मे। इस तरह से वह घर भी सम्भालने लगा था। वह मकानों के नक्शे भी बनाता था, उन्हे खड़ा भी करवाता था। यह उसका नौकरी से अलग निजी धन्धा था, जिससे खासा रुपया कमा लेता था। लेकिन थी यह शुरुआत। पर एक कार्य वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए कर रहा था। म्यूजिक कान्फ्रेन्सों मे जाना, रेडियो पर खुद गीत गाना, या फिर नाटकों वगैरह मे सगीत-निर्देशन देना। इससे वह उस तबके में पहुँच रहा था जो सिर्फ नौकरी करते हुए उसकी पहुँच से बाहर रहता। रजनीश ने बताया कि उसकी यह ख्वाहिश और यह गति-शीलता इतनी आसान नही थी, जैसी आसानी से वह बता रहा है। इस सफर की दिक्कतों को तो वह फिर कभी बताएगा, जब बताने के मूड में होगा। अब तो वह घटना सुनो जो उसकी जिन्दगी की अमिट घटना है। रजनीश मुझे बीच-बीच में सम्बोधित भी कर देता था।

उसने बताया कि एक बार बम्बई मे कोई बडे स्तर पर म्यूजिक तथा नृत्य का कार्यक्रम होने जा रहा था। उसे पता लगा कि उसकी मौसी मीना वहां प्रोग्राम देने जा रही है। उसके पास भी सयोजकों की तरफ से निमन्त्रण आया था, क्योंकि वह लोग उसे निजी तौर पर जानते थे। मौसी ने माँ को किस तरह मना-मनूकर ठगा था यह उसे पता था और

इसी एक बात ने उसमें तुर्शी उतार दी थी। वह यह भी मानता था कि साजिन्दे बाबा को बाद मे बदनाम करने मे मौसी का हाथ था, क्योंकि माँ ने उसकी नसीहत नही मानी थी और साजिन्दे बाबा से रिश्ता तर्क नही किया था। यह ख़राश उसमे थी और मौसी नीना को वह एक बार हराना चाहता था, जिसका कि बेटा डाक्टरी पढते हुए अपने को पता नही कितना बड़ा और श्रेष्ठ तबके का समझने लगा था। उनकी इस ऊँचाई से रजनीशकान्त को कही ईर्ष्या थी और उसने मुझसे घटना बताते हुए सवाल किया—तुम बताओ, मुझमें जलन होना गैरवाजिब है? जिस बेटे की माँ को ठगा गया हो और उस हालत मे सताया गया हो जब वह अपने ही दुख से दबी हुई हो, उस बेटे में नीचा दिखाने की भावना जागना लाज़मी नही है?

फिर रजनीश बोला था—वह तो आज भी है, लेकिन मेरी वह बिसात जा चुकी, जिसका कि मुझे कभी फख्र था।

मैंने संयोजकों को लिख भेजा कि मै तो आऊँगा ही अगर आपके प्रोग्राम को सूट करे तो मैं अपनी माँ को भी लाऊँ, जो आपके कार्यक्रम की सफलता में चार चाँद लगा देंगी। यह अपनी बडी बहिन नीना से बेहतर गायक और नर्तकी है। हिस्सा लेने की फीस कार्यक्रम के बाद तय हो सकती है।

यह पूरी तरह व्यवसायी सुझाव था, जो उसी तरीके से रखा गया था। उसकी स्वीकृति भी आ गई थी।

पासा तो रजनीश द्वारा फेंक दिया गया था। लेकिन सवाल मीना की हामी भरने का था, जो उतना ही असम्भव था, जितना किसी आत्म-तुष्ट प्रोफेसर को राजनीतिक टिकट देकर कहना कि जाओ, अपने प्रति-द्वन्द्वियों को पछाडो। जिसका घर और अध्ययन-कक्ष दुनिया रह रही हो उसे भीड-भड़क्के मे फेंकना, वह भी राजनीति के माहौल मे, जिसमे हर झूठ, हर तरह की दगाबाजी और चालाकी के बिना काम नही चले!

उसने मौका देखकर माँ के सामने प्रस्ताव रखा

—क्या! अब मैं प्रोग्राम में जाऊँगी! क्यों? किसलिए?

—मेरे लिए। तू जानती है मैं म्यूजिक डाइरेक्टर बनना चाहता हूँ।

बम्बई का मौका कैसे छोड़ सकता था ?

—तू जाता है तो जा ! लेकिन मेरे प्रोग्राम से क्या मतलब ? और मैं क्या अब उस कसम को तोड़ूँगी जो अपने-आप मैंने अपने ऊपर लगाई थी। किस बूते पर तोड़ूँगी ? मेरे पास अब रहा क्या है, न रियाज, न खिंचाव, न वह दम।

लेकिन रजनीशकान्त ने जिद पकड़ी—तुझ में कुछ नहीं घटा है। तू भगवती और कृष्ण के तस्वीर के सामने जो गाती है, वही गा देना। जिस तरह नाचती है नाच देना। मौसी भी उस प्रोग्राम में जा रही है।

—तब तो बिलकुल नहीं जाऊँगी। नीना मुझे वैसे गलत समझती आई है, सोचेगी कि मैं···

रजनीश कहता है मौसी का नाम मुझे खारा जहर लगता है। मैंने माँ की बात को काटते हुए गुस्से में कहा—वह क्या सोचेगी, मुझे उससे क्या मतलब ? मतलब रखे भी क्यूं ? मैं तो चाहता हूँ तू एक बार उसे नीचा दिखा दे, बस ! मैं तुझसे दोबारा कभी किसी प्रोग्राम में नाचने के लिए नहीं कहूँगा।

—मैं कैसे नीचा दिखा पाऊँगी। वह प्रोग्राम देते-देते इतनी आगे बढ़ चुकी है। तू स्टेज पर उतारकर उससे मेरी मिट्टी पलीत करवाएगा।

—वह तू मेरे ऊपर छोड़। बम्बई में अगर तेरा-मेरा नाम आ गया तो अखबारों में छपेगा। मैं उस नाम के जरिये फिल्मों में घुसने की कोशिश करूँगा। बम्बई में कार्यक्रम है, कुछ तो फिल्मी लोग देखने-सुनने आएंगे।

—तू उनको मेरे लिए मना लिख दे। मुझे उसी में रहने दे मैं हूँ। इस जिन्दगी में अब क्या करना, जिसे कभी का रजनीश, इन्हें मना कर दे।

जगह रखती है—मेरी नजर मे मौसी भी बेईमान है और उसका लडका भी। उससे तो मैं निपटूगा, लेकिन मौसी को तो तू ही नीचा दिखा सकती है।

—तू ऐसा सोचता क्यों है ?

—क्यो न सोचू ? उस मौसी की बच्ची ने हमारे पास छोडा क्या ? उसका बेटा यह जानते हुए भी कि वह मेरा भाई है, अपनी डाक्टरी के जोम मे मुझे अनजान बताता है, जैसे मैं उसकी आमदनी या इज्जत पर बट्टा लगा दूंगा। यह नही सोचता कि वह नीना नर्तकी का बेटा रहेगा, जैसे मैं तेरा—चाहे कितनी इज्जत पा ले।

—तू नाहक मुझपर क्यों नाराज हो रहा है ?

—सोचा था तू दुनिया की बात टाल सकती है, मेरी नही। लेकिन तू कही भी मुझे उठते नही देखना चाहती। किसी तरह भी मुझे सहारा नही देना चाहती।

रजनीश ने बताया कि उस वक्त मुझे ऐसा लगा कि मेरी हर तदबीर और हिकमत नाकारा है। मैं खुद नाकारा हूँ और मेरी अन्दर की आग राख पड़े कोयले की तरह बेकार और निप्ताप है।

माँ दो दिन तक ऊहापोह मे पडी रही। मैं सुस्त-सुस्त घर मे आता और मुंह लपेटकर पड जाता। वह मेरा नाटक नही था, सच्चाई थी। मैं अब भी कभी-कभी ऐसी हालत मे हो जाता हूँ कि जिन्दगी नाकामयाब और बिलकुल बेकार लगती है। लगता है कि मेरी सारी कोशिशें ऐसे बेबस जानवर की है, जो आजाद होने की मेहनत मे अपने सिर को जगले के सीखचो से टकराता है, फिर लहूलुहान और पस्त होकर बैठ जाता है। जानवर शायद आत्महत्या करने की नही सोचता लेकिन मुझे किन्हीं लमहों मे लगता है मुझे खुदकशी कर लेनी चाहिए। उसी मे निजात दीखती है।

मैं बाद मे बताऊँगा कि रजनीशकान्त मे यह खुदकशी की भावना अवसर क्यो हावी होती है। वैसे मुझे ऐसा भी लगता है कि आदमी मे जहाँ अपने को बनाने की प्रवृत्ति होती है, वहाँ अपने को ध्वस करने की भी प्रवृत्ति होती है। वह किन्ही क्षणो मे अगर जीने के सैलाब में

चहता है तो किन्ही लमहों में अपने को ख़त्म भी करना चाहता है।

रजनीश की बात को कई लोग समर्थन दे सकते हैं। मैं भी कह सकता हूँ कि कितनी ही बार हताशा के हमले ने मुझे ऐसी मनःस्थिति की तरफ ढकेला है, पर जिन्दगी की ख्वाहिश ने तुरत-फुरत उस भावना से उबारा भी है।

रजनीशकान्त के तनाव तो हर वक्त के थे और बहुत कुछ वास्तविक थे, लेकिन मैंने तो ऐसे क्षणों में भी खुदकशी की लहर को बिजली की झपक की तरह उठता पाया है, जब उसके उठने की सम्भावना ही नहीं होनी चाहिए। मतलब, मैं अपनी एक लड़की मित्र के साथ कुतुबमीनार देखने गया था। भरे रोमांटिक मूड में था। दोनो ऊपर पहुँचे। पूरी दिल्ली के फैलाव को चारों तरफ देखा। नीचे के बौने लगते आदमियों को देखा। एक क्षण के लिए दिमाग मे आया—कूद पड़ूँ यहाँ से। और फिर एक मानसिक चित्र बना कि मेरा सिर फट गया है—खून-ही-खून है। और मैं लाश हुआ पड़ा हूँ।

मेरे मुँह से उस वक्त निकल गया था—क्यों, मैं यहाँ से कूद जाऊँ तो!

सनकियों के क्या सींग होते है—उस लड़की मित्र ने कहा था।

बस, यह मृत्यु-कामना की झपक-भर थी। बेहद खुशी के मूड में।

यह कैसी प्रवृत्ति थी? साहसिकता दिखाने की, या मौत को पाने की?

लेकिन बात तो रजनीशकान्त कर रहा था, और मैं इस वक्त लिखते-लिखते अपने ही किसी अनुभव को दार्शनिक चेहरा देने लगा। आदत होती है आदमी मे दूसरे से अपने मे उछलना, अपने से दूसरे मे उछलना।

मीना के सामने रजनीश ने जो दुविधा खडी की थी, उससे निकलने में उसे अपने से कितना लड़ना पड़ा होगा।

निर्णय के पल अक्सर कितने भावुक, कितने संजीदा क्षण होते है। जिसमें सारा व्यक्तित्व और आगे-पीछे की जिन्दगी ठाठें मारती होती है।

बेटे ने वह चाहा था जिसे मीना ने आगे जिन्दगी के किसी हिस्से मे दोहराने की नहीं सोची थी। बेटे की इतनी मायूसी वह किसी तरह से वर्दाश्त नहीं कर सकती थी। वह उस आग को भी जान रही थी, जिसमें वह जल रहा था और जो कोशिश के बाद भी ममोई नहीं जा पा रही थी।

मीना को बेटे के सामने झुकना पड़ा था। उसे उसका दिल रखना था। जो उसे ऐसे मुकाबले मे घसीट रहा था, जिसे उसने उस उम्र मे भी मंजूर नही किया था जब उसे करना चाहिए था। लेकिन वह इस अनहोनी के लिए अपने को तैयार करने लगी थी।

रजनीशकान्त ने बताया कि माँ का फैसला उसके लिए उस वक्त किसी बहुत बड़े इम्तिहान को जीतना था। माँ ने तैयारी भी करनी शुरू कर दी थी, जिसमें साजिन्दे बाबा अपना जोर लगा रहे थे। उनकी भी अपनी शिकायतें थी और उन पर की गई ज्यादतियो का अप्रत्यक्ष बदला था। मीना के सामने भी क्या कोई बदला होगा? रजनीशकान्त इस बारे मे बताने की स्थिति मे नही आ पाया। उसने कहा, वह तो अपने उत्साह मे भूला हुआ था। बस, वह यह जानता था कि उसकी माँ ऐसा करने के लिए तैयार हो गई, जो किसी हालत मे वह नही करती। यह उसका प्रेम ही था उसके प्रति।

अगर बात न फैलती, तो न फैलती। लेकिन रजनीश ने कहा, हो सकता है किसी झोंक मे उसी से निकल गई हो। बहरहाल नीना मौसी को यह पता लग गया था कि वह भी प्रोग्राम मे जा रहा है और उसकी माँ मीना भी।

मैंने बीच मे रजनीशकान्त को टोका—क्या तुम बता सकते हो कि उस वक्त तुम्हारी माँ अपनी प्रतिष्ठा के लिए तैयारी कर रही थी?

कैसे सवाल करते हो? क्या मैं इतनी बारीकियों में जाता? और क्यो जाता? लेकिन मैं समझता हूँ ऐसे प्रोग्रामो मे जाने वाला कम से कम यह तो सोचता ही है कि उसके निभाव को श्रोता पसन्द करें। वह प्रशसा और तालियाँ पाये।

जानते हो! दर्शक बड़ा निर्दयी होता है। वह या तो पसन्द करता है या फिर उड़ा देता है। वहाँ वह साफ खरीदार होता है अपनी पसन्द के मुताबिक मनबहलाव का खरीदार।

माँ जरूर इसी नजर से तैयारी कर रही होगी कि लोगों को उसकी अदायगी पसन्द आये।

नीना मौसी ने अपनी अकड़ बनाए रखी और बम्बई में एक ही जगह

ठहरने पर भी बोलना नही चाहा।

हाँ, माँ की उस जगह बड़ी विचित्र स्थिति हो गई थी। वह नर्वस हो रही थी। नीना मौसी तो अपने अहं मे कहो या निर्मोह मे कि इस तरह जतला रही थी कि मीना को वह न जानती है, न उससे कोई रिश्ता है, लेकिन माँ सामने-के-सामने इस दूरी को बनाये रखने मे तनाव पा रही थी।

एक बार तो उन्होने कह भी दिया— किस दिक्कत में फँसा दिया तूने।

इस जगह मैं उनको उकसाने वाला बना। माँ, कभी तो असलियत को आँख से देख ले। नीना मौसी ने अपने फायदे से हटकर कभी तुझे छोटी बहन का प्यार दिया ? इसके डाक्टर बेटे ने कभी मुझे भाई की तरह पहिचानना चाहा।

– नही करते, तो न करें।

- तो फिर तू क्यो एकतरफा पिघलती है। मुझे एक बार इसे नीचा दिखा लेने दे।

- पता नही तू क्या सोचता है ?

– तू इस वक्त कमजोर मत पड़, नही तो सारी मेहनत बेकार हो जाएगी। सोच ले कि तू अपने बेटे के लिए कर रही है।

—वह तो करवा ही रहा है। इसके बाद तो कभी ऐसा नही करेगा ?

- हर्गिज नहीं करूँगा।

माँ ने किसी तरह से अपने को समेटा। मैं महसूस कर रहा था कि वास्तव मे मैंने माँ को उसके बन गए स्वभाव के बिल्कुल विपरीत स्थिति में डाल दिया था। वह चुनौती की स्थिति थी।

तब रजनीश ने बताया कि वह प्रोग्राम कितना सफल गया। माँ वास्तव मे गायिका मीरा हो गई थी। उसके भजन और गज़लों ने श्रोताओं को हिलाकर रख दिया था। उसके नृत्य ने ऐसा समा बाँधा था कि लोग 'वाह-वाह' करके रह गए। माँ के साथ उसका कार्यक्रम भी सफल हुआ था। नीना मौसी फीकी पड़ गई थी।

रजनीश ने फिर कलाकार के सम्बन्ध में अपनी पुख्ता धारणा को मेरे सामने रखा था।

मीना को बेटे के सामने झुकना पड़ा था। उसे उसका
था। जो उसे ऐसे मुकाबले मे घसीट रहा था, जिसे उसने
भी मंजूर नही किया था जब उसे करना चाहिए था। लेकि
अनहोनी के लिए अपने को तैयार करने लगी थी।

रजनीशकान्त ने बताया कि माँ का फैसला उसके लिए
बहुत बड़े इम्तिहान को जीतना था। माँ ने तैयारी भी
दी थी, जिसमें साजिन्दे बाबा अपना जोर लगा रहे थे।
शिकायतें थी और उन पर की गई ज्यादतियों का अप्रत्य
मीना के सामने भी क्या कोई बदला होगा ? रजनीश
बताने की स्थिति मे नही आ पाया। उसने कहा, वह
मे भूला हुआ था। बस, वह यह जानता था कि उर
के लिए तैयार हो गई, जो किसी हालत मे वह नही
प्रेम ही था उसके प्रति।

अगर बात न फैलती, तो न फैलती। लेकिन र
सकता है किसी झौक मे उसी से निकल गई हो। ब
को यह पता लग गया था कि वह भी प्रोग्राम मे जा
माँ मीना भी।

मैंने बीच मे रजनीशकान्त को टोका—क्या तुम
उस वक्त तुम्हारी माँ अपनी प्रतिष्ठा के लिए तैयार

कैसे सवाल करते हो ? क्या मैं इतनी बारीकि
क्यो जाता ? लेकिन मैं समझता हूँ ऐसे प्रोग्रामों
कम यह तो सोचता ही है कि उसके निभाव को
प्रशसा और तालियाँ पाये।

जानते हो ! दर्शक बडा निर्दयी होता है। व
है या फिर उडा देता है। वहाँ वह साफ खरी
पसन्द के मुताबिक मनबहलाव का खरीदार।

माँ जरूर इसी नजर से तैयारी कर रही होगी
अदायगी पसन्द आये।

नीना मौसी ने अपनी अकड बनाए रखी और

एक सामाजिक बनावट है जो कभी से चली आ रही है। उसमें तबके है, सीढ़ियाँ है, तहें या मच है।

जिस जगह बाप या माँ होते है—जिस तह या स्तर पर वही जगह होने वाली औलाद के लिए निश्चित हो जाती है।

मैं क्यो मीना का बेटा हुआ ? किसी लखपति पूँजीपति या राजनीतिक व्यक्ति का बेटा क्यों नही हुआ ?

अगर मीना का बेटा हुआ तो मेरी सामाजिक जगह—इज्जत या उपेक्षा, मान्यता या अमान्यता क्यो निश्चित हो गई ? और शिकजे मे मेरा भविष्य भी लगभग निश्चित हो गया। क्यो ?

पीछे लौटो ? -- क्या मैंने चाहा था कि एक नर्तकी का बेटा होऊँ और ताजिन्दगी ज़िल्लत सहूँ ?

तो पैदा होने वाले पर तो नही है कि वह कहाँ, किस माँ-बाप से पैदा हो। जब नकली सतान पैदा करना सफल हो जाएगा तो इस तरह से सोचने का तरीका बदल जाएगा।

तब भी एक सवाल तो बना रहेगा—किसी छोटी जाति में, किसी तवायफ के घर मे, किसी गरीब के घर मे कोई क्यों पैदा किया जाए ? या कोई क्यो पैदा होना चाहेगा ? अगर वह ढर्रा और खड़जा नहीं टूटना है तो कानूनी रोक लग जानी चाहिए कि ऐसे लोगो को औलाद रखने का हक नही है, जिनको सोसायटी निचला दर्जा देती है।

लेकिन ऐसा कानून नहीं बनाया जा सकता यार, वरना कानून बनाने वालों को हमवार जमीन पर आ जाना होगा। उनके स्तर छूट जाएँगे, उनका बेहतर होना छूट जायेगा। उनके चबूतरे, डायस और मंच छूट जाएँगे।

दोस्त, ताकतों पर बँटी हुई सोसायटी में असुविधा की जगह पाने वाला अपनी तसल्ली के लिए बहाने तो तलाश करेगा ही। वह किस्मत को रोयेगा, अपनी पैदाइश को रोयेगा, अपने माँ-बाप को रोयेगा।

वह उनको गाली देगा, जिन पर उसका वश नही चलता। लेकिन मैं अपनी माँ को गाली कैसे दूँ, बताओ ? मुझे पैदा करने का हक क्या उसे नही था ?

जानते हो मैं क्यों कहा करता हूँ कि कलाकार भी पैदायशी देन रखता है, उसके बाद उसकी मेहनत उसे माँजती है।

कुछ लोग स्वाभाविक कलाकार होते है। माँ वैसी ही थी। फिर कला का अपना दर्द होता है। वह अगर सच्चा हो तो और ही बात बनकर निकलती है। माँ को वह ज़िन्दगी से मिला था। नीना मौसी की कला दिल की नही थी, रियाज़ की थी। इसलिए कही जाकर वह सिर्फ अदायगी रह जाती थी।

रजनीशकान्त ने बताया कि हालाँकि माँ ने उसकी इच्छा पर अपनी सामर्थ्य की बाजी लगाई थी, लेकिन यह उसके लिए मँहगी पड़ी।

नीना मौसी ने अपना रवैया माँ के ख़िलाफ और तेज कर दिया। मुझसे भी एक गलती हुई, जिसका ख़ामियाजा मैंने ऐसा भुगता कि वह मेरी गलती बनकर हावी हो गया।

कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि माँ की जल्दी मौत का कारण मैं भी किसी हिस्से में बन गया। वह मैं तुम्हे फिर कभी बताऊँगा, जब कभी मूड में होऊँगा।

मीनाबाई की जिन्दगी के हिस्से झलकियो की टूटी हुई माला की तरह मुझे मिल रहे थे, जिन्हे मै जोड़कर मीना को मीना की तरह देखता जा रहा था। आखिर वह क्या औरत थी जो रजनीशकान्त का अन्दरूनी घाव भी बनी थी, फिर भी उसके लिए जिये जाते रहने का आधार!

वास्तव मे मीना मेरे वास्तविकता और कल्पना के संयोजन मे वही रूप ले रही थी, जो रजनीश के लिए मीरा के हमरूप था।

अच्छा होता कि मैं एक बार का भागा हुआ, फिर लौटकर नहीं आता। लेकिन आता कैसे नही, किस्मत मे तो यही सड़ना और ख़राब होना बदा था।

मैंने रजनीशकान्त से पूछा—क्या तुम किस्मत को मानते हो?

मानना-वानना क्या होता है? जिस सच्चाई की वजह पकड़ में नहीं आती, उसे किसी भी तरह से समझ लो। किसी तरह से भी मान लो!

फिर रजनीशकान्त किस्मत या पैदाइश या ईश्वर पर अपनी तरह से बोलने लगा।

एक सामाजिक बनावट है जो कभी से चली आ रही है। उसमें तबके हैं, सीढ़ियाँ हैं, तहे या मंच हैं।

जिस जगह बाप या माँ होते है—जिस तह या स्तर पर वही जगह होने वाली औलाद के लिए निश्चित हो जाती है।

मैं क्यों मीना का वेटा हुआ? किसी लखपति पूँजीपति या राजनीतिक व्यक्ति का वेटा क्यों नही हुआ?

अगर मीना का बेटा हुआ तो मेरी सामाजिक जगह—इज्जत या उपेक्षा, मान्यता या अमान्यता क्यो निश्चित हो गई? और शिकंजे मे मेरा भविष्य भी लगभग निश्चित हो गया। क्यों?

पीछे लौटो? – क्या मैंने चाहा था कि एक नर्तकी का बेटा होऊँ और ताजिन्दगी ज़िल्लत सहूँ?

तो पैदा होने वाले पर तो नही है कि वह कहाँ, किस माँ-बाप से पैदा हो। जब नकली संतान पैदा करना सफल हो जाएगा तो इस तरह से सोचने का तरीका वदल जाएगा।

तब भी एक सवाल तो बना रहेगा—किसी छोटी जाति में, किसी तवायफ के घर में, किसी गरीब के घर मे कोई क्यों पैदा किया जाए? या कोई क्यों पैदा होना चाहेगा? अगर वह ढर्रा और खड़ंजा नही टूटना है तो कानूनी रोक लग जानी चाहिए कि ऐसे लोगो को औलाद रखने का हक नहीं है, जिनको सोसायटी निचला दर्जा देती है।

लेकिन ऐसा कानून नही बनाया जा सकता यार, वरना कानून बनाने वालों को हमवार जमीन पर आ जाना होगा। उनके स्तर छूट जाएँगे, उनका वेहतर होना छूट जायेगा। उनके चबूतरे, डायस और मंच छूट जाएँगे।

दोस्त, ताकतों पर बँटी हुई सोसायटी मे असुविधा की जगह पाने वाला अपनी तसल्ली के लिए बहाने तो तलाश करेगा ही। वह किस्मत को रोयेगा, अपनी पैदाइश को रोयेगा, अपने माँ-बाप को रोयेगा।

वह उनको गाली देगा, जिन पर उसका वश नहीं चलता। लेकिन मैं अपनी माँ को गाली कैसे दूँ, बताओ? मुझे पैदा करने का हक क्या उसे नही था?

माँ का जवाब हारी हुई, लेकिन सब्र को अपने में उतार लेनेवाली औरत का जवाब था। मेरे जाने के लिए उसने 'हाँ' भी कह दी थी, पर खास उत्साह नहीं दिखाया था।

मैंने कान्त से सवाल किया था—क्या तुम अपनी माँ को हारी हुई औरत मानते थे? और कि क्या तुम उसमें किसी भी चीज के लिये उत्साह जैसी चीज पाते थे?

तुम्हारे सवाल बड़े अड़ास वाले होते हैं। माँ हारी हुई तो थी ही, क्योंकि उसने एक खास तरह की जिन्दगी चाही, लेकिन नहीं पा सकी। फिर उसने उस ज़िन्दगी की तरफ की खिड़की ही बन्द कर दी।

वह अपने अन्दर सफर करने लगी—हादसे को भुलाने का, यादों को भुलाने का, घावों को भरने का। इस सफर में वह अपने ही अन्दर अपना रमाव तलाश कर रही थी। लोगों की बेवफाइयों से बचने के लिए उसने तस्वीरों को सच मान लिया था—भगवती की तस्वीर को, कृष्ण की तस्वीर को। इनसे तो बेवफाई और धोखे का डर नहीं था।

उत्साह-वुत्साह की बारीकी मैं नहीं जानता। मैंने तो उसे पूजा के दौरान रोते भी पाया और नाचते भी। ज्यादा-से-ज्यादा मैं था, जिसे वह देखकर खुश होती थी। इसका सबूत मैंने तुम्हें दे दिया। उसका बम्बई के प्रोग्राम में हिस्सा लेना, सबसे पुख्ता सबूत था।

मैं तो बम्बई चला गया लेकिन वह जाना मेरे लिये महँगा पड़ा। वहाँ मैं करीबन छः महीने रहा। अपनी तरह से अजहद कोशिशें कीं। लेकिन महसूस एक ही बात हुई। जितना ऊपर जाओ किले इतने मज़बूत होते जाते हैं कि घुसने का रास्ता नहीं मिलता। लोग सूराख तक लेने नहीं देते, क्योंकि उनका नया मुकाबला खड़ा होता है।

यह सारी रुपये और फ़न की दुनिया चालाकियों, धोखेबाजियों की दुनिया है। जोड़-तोड़, स्वार्थ, अफवाह, 'पाया' और मुक़ाबला इस दुनिया में घुसने की कारगर ख़ासियतें हैं। इनसे पूछो कि क़िस्मत का मतलब क्या है? यह कहेंगे—पासा पड़ गया तो तख्त वरना तख्ता है।

इनसे पूछो कि दोस्ती और रिश्ते क्या होते हैं?

जवाब मिलेगा—दोस्ती वह, जो मुनाफ़ा बढ़ाये। रिश्ते वो, जो

सफर तो आदमी को अपनी तरह तय करना होता है लेकिन गलियाँ और रास्ते पूर्व निश्चित कर दिए जाते है। निकल कर दूसरे रास्ते को कोई अपनाना चाहे तो उसकी पीठ खोलकर दिखा दी जाती है, यह रहा उसका पैदाइश का दाग या मुहर !

मैंने ताकत की लडाई लड़नी चाही – लड़ते हुए विखर गया। कुछ विखेरा गया, कुछ विखर गया। लेकिन पैदाइशी मुहर ने तो पीछा आज तक नही छोड़ा।

मुझे क्या पता था कि माँ मेरे पर इतनी ठहरी है कि मेरी छः महीने की गैरहाजिरी वर्दाश्त नही कर पायेगी ? मुझे यह भी क्या पता था कि वम्बई के प्रोग्राम मे एक वार अख़बारों में सुर्खियाँ लेने वाली मीना अन्दर-अन्दर छीज रही है।

मुझ मे तो जोश था, रुपये और कला की ताकत को इतना हासिल कर लेना चाहता था कि पैदाइश, जात, पढाई, पहले का दर्जा किसी को याद नही रहे, अगर याद करवाया जाए भी तो वह वेअसर साबित हो।

मैं नौकरी से लम्वी छुट्टी लेकर वम्बई चला गया, म्यूजिक डायरेक्टर वनने। भागा नही था, वाकायदा माँ से इजाज़त ली थी।

मैंने माँ से एक प्रस्ताव और रखा था—तेरी स्टेज पर वापसी तो हो गई है। अपन लोग वम्बई मे ही रहने की सोचे, क्या पता किस्मत का सितारा चमक उठे।

माँ को मनाने की यही भाषा हो सकती थी। वह तो किस्मतवादी थी, भगवतीवादी थी।

उसने कहा कि नही। वह मेरे वीच मे नही आएगी, मैं उसे अपनी तरह नही घसीटूँ।

माँ ने कहा था—देख, कान्त ! मैंने अपनी जिन्दगी को अपनी तरह से जिया है। हाँ, जब दूसरे के वहकावे मे आ गई, तो पछताना पडा। आखिर औरत थी, इज्ज़त की और चैन की जिन्दगी पाने की ख्वाहिश हो गई। नही पानी थी तो आदमी गलत निकल गया। अब जो जिन्दगी चल रही है, उसे ऐसे ही चलने दे। तू जा; अपनी किस्मत आजमा ले। अगर वहीं पहुँचना वदा होगा तो तेरे जम पाने के बाद आ जाऊँगी।

माँ का जवाब हारी हुई, लेकिन सब्र को अपने में उतार लेनेवाली औरत का जवाब था। मेरे जाने के लिए उसने 'हाँ' भी कह दी थी, पर खास उत्साह नही दिखाया था।

मैंने कान्त से सवाल किया था—क्या तुम अपनी माँ को हारी हुई औरत मानते थे? और कि क्या तुम उसमें किसी भी चीज़ के लिये उत्साह जैसी चीज़ पाते थे?

तुम्हारे सवाल बड़े अड़ास वाले होते है। माँ हारी हुई तो थी ही, क्योंकि उसने एक ख़ास तरह की जिन्दगी चाही, लेकिन नही पा सकी। फिर उसने उस ज़िन्दगी की तरफ की खिड़की ही बन्द कर दी।

वह अपने अन्दर सफर करने लगी—हादसे को भुलाने का, यादों को भुलाने का, घावो को भरने का। इस सफर मे वह अपने ही अन्दर अपना रमाव तलाश कर रही थी। लोगों की बेवफाइयों से बचने के लिए उसने तस्वीरों को सच मान लिया था—भगवती की तस्वीर को, कृष्ण की तस्वीर को। इनसे तो बेवफाई और धोखे का डर नही था।

उत्साह-वुत्साह की बारीकी मैं नही जानता। मैंने तो उसे पूजा के दौरान रोते भी पाया और नाचते भी। ज्यादा-से-ज्यादा मैं था, जिसे वह देखकर खुश होती थी। इसका सबूत मैंने तुम्हे दे दिया। उसका बम्बई के प्रोग्राम में हिस्सा लेना, सबसे पुख्ता सबूत था।

मैं तो बम्बई चला गया लेकिन वह जाना मेरे लिये महँगा पड़ा। वहाँ मैं करीबन छः महीने रहा। अपनी तरह से अज़हद कोशिशें कीं। लेकिन महसूस एक ही बात हुई। जितना ऊपर जाओ किले इतने मज़बूत होते जाते हैं कि घुसने का रास्ता नही मिलता। लोग सूराख तक लेने नही देते, क्योंकि उनका नया मुकाबला खड़ा होता है।

यह सारी रुपये और फन की दुनिया चालाकियों, धोखेबाज़ियो की दुनिया है। जोड़-तोड़, स्वार्थ, अफवाह, 'पाया' और मुकाबला इस दुनिया मे घुसने की कारगर ख़ासियतें हैं। इनसे पूछो कि क़िस्मत का मतलब क्या है? यह कहेंगे—पासा पड़ गया तो तख्त वरना तख्ता है।

इनसे पूछो कि दोस्ती और रिश्ते क्या होते हैं?

जवाब मिलेगा—दोस्ती वह, जो मुनाफा बढ़ाये। रिश्ते वो, जो

फायदे मे इजाफा करें।

मैं अगर छः महीने के बजाय चार-पाँच साल तक धक्के खाने का, भूखे लड़ने का प्रोग्राम बना लेता तो शायद किसी जगह पहुँच पाता। लेकिन तब मैं वह नही हो पाता जो आज हूँ।

वैसे तो अब भी क्या हूँ? अब तो वह भी नही रहा जो पहले था। जीता चल रहा हूँ, क्योंकि जीना है।

ऐसा क्यों कहते हो? यह तो एक तरह की अहसान-फरामोशी है। नाफरमानी है जीने की शर्त की। मैं कान्त से कहता हूँ।

वह एक कडवी मुस्कराहट होठों पर लाता है और कह बैठता है—अरे यार! यह हमारा ही जिगर है कि जिये जा रहे हैं, वरना तुम हमारी जगह होते तो चौकोने हो जाते।

फिर रजनीशकान्त जैसे कवि हो गया—स्लेट देखी है? ज़रूर देखी होगी। वह बचपने से हाथ मे पकडा दी जाती है। इस उम्र तक आते-आते पत्थर तो टूट-टूटकर निकल जाता है, रह जाता है चौखटा। बस! हम तो वही रह गये! तुम्हारे चौखटे मे हो सकता है नुकीले, टूटे पत्थर के टुकडे बाकी रह गये हों। है क्या?

मैं क्या जवाब दे पाता!

लेकिन वह बोला—बतायेंगे डियर! बतायेंगे कि हम कैसे जी रहे हैं और इस सवाल के बावजूद कि क्यों जी रहे है, हम जिये जा रहे है।

मैं फिर चुप।

जानते हो माँ ने मेरे साथ कैसी दगा की—दगा ही कहूँगा। उसने मुझे ढील पर छोड़ दिया जब मैं बम्बई था। उसने मुझे जाते वक्त भी नही बताया कि वह नासूर जो उसकी जिन्दगी मे पैदा हुआ था, वह उसके दिल तक पहुँच गया है। वह जान रही थी कि वह घट रही है, किसी बीमारी को पाल रही है, लेकिन मुझे नही बताया कभी। साजिन्दे बाबा को भी नही बताया। हम में से किसी को शक कैसे होता! वह तो कभी-कदास के दर्द को 'वैसे ही हो गया होगा, खाने-पीने का दर्द है' कहकर टाल देती थी।

यह दगा नही तो और क्या था कि उसने बीमारी की अलामत मे भी

हॉस्पिटल नहीं जाना चाहा ?

उसने साजिन्दे बाबा से यह भी नहीं कहा कि वह मेरे वगैर नहीं रह पा रही है, कि वह मुझे लौट आने के लिये लिख दें।

और उधर मैं उस फिल्मी दुनिया मे गैर-काबिल लोगो को अपनी कला दिखाता फिर रहा था। प्रोड्यूसरों और डायरेक्टरो की मस्कावाजी और चमचागीरी कर रहा था कि किसी तरह कोई चास मिले—इतना तो जुगाड बैठे कि बम्बई जैसे महँगे और नकली शहर मे रह सकूँ।

यह शराव की लत वही से लाया। लेकिन छ महीने मे फिल्मी दुनिया का रेशा-रेशा देख लिया। माफ करना डियर, चलो मैं तो पैदाइशी वेश्या का बेटा हूँ, वहाँ तो…वस…तुम समझ सकते हो कौन-सा रिश्ता कारगर हो सकता है। शराब, औरत और पैसा तीनो एक ही चीज के दीगर नाम है। क्या है एक्स्ट्राओ की जिन्दगी, टेकनीशयनों की जिन्दगी, स्टेज वनानेवालों से लेकर पोशाक पहिनानेवालो और मेकपमैनो की जिन्दगी ! सिर्फ एक उसूल है—ठगो और ठगे जाने के लिए उत्सुक होते रहो। रुपया बहता है लेकिन कुछ को बूंद तक नसीव नहीं होती।

मैं सस्ता गया था, सस्ता लौट आया। अगर महँगा वन पाता, अपने फ़न को बेचने के लिए सौदा मार पाता तो सफल आदमी वन जाता।

साजिन्दे वावा का तकरीवन छ-सात महीने बाद खत आया कि मीना की तबीयत खराब चल रही है, आ सको तो आ जाओ।

मैं वैसे भी वहाँ कोई मौका नही देख रहा था। छुट्टियाँ भी खत्म हो रही थी। जो ख्वाव लेकर गया था, वे वहीं दफन कर आया। माँ से ज्यादा मेरे लिये क्या हो सकता था ?

मैंने लौटकर देखा तो माँ सीक हो चुकी थी। उसके चेहरे की चमक जा चुकी थी। आँख के नीचे काले दायरे वन गये थे। वह मुझे देखती रही थी। उसकी उस नज़र में क्या था—मैं पढ नही पाया था। बहुत-कुछ था, लेकिन एक शून्य था। मुझे लगा कि मैं किसी ऐसी छाया के सामने खड़ा हूँ जो मुझे ढँक रही है।

फिर माँ के इलाज का सिलसिला चला। मैं कील से उचटकर, भटक-भटकाकर उसी कील पर आ गया था।

लेकिन माँ की ख्वाहिश दूसरी तरफ जा रही थी। वह मेरी शादी करना चाह रही थी। मैं माँ की किसी ख्वाहिश को नकारने की स्थिति मे नही था। मेरे लिये लड़की ढूँढी गई।

मुझमें यह तेज़ इच्छा थी कि मैं हम-जाति या हमपेशेवाली जमात से बाहर की लडकी पाऊँ।

पर कौन देता है तवायफ के बेटे को अपनी भली लड़की और कौन लडकी किसी वेश्या के बेटे के साथ होना चाहेगी? उसकी पीठ पर दगी हुई पैदाइश की मुहर उसे कब छलांगने देती है! खीची गई पत्थर की रेखा!

तबके को तबका रास आता है, तभी तो तबका चलता है, तभी तो तबका टूटता नही। वरना यह ढांचा, ढांचा कैसे बना रहे? ढीला होकर टूट न जाये!

अमलेन्दु तो डाक्टर हो गया, पर क्या वह तबके की रेखा फलांग सका?

मज़ा देखो! मैं ओवरसियर। अमलेन्दु डाक्टर। पेशे के लिहाज से बराबर। दूसरो के बराबर! लेकिन···

जिनकी पीठ पर ठप्पे है, वे एक ज़ात के। जिनकी छाती पर मोहरें दगी हैं वे श्रेष्ठ। वे आला दर्जे के।

माँ को लड़की मिल गई। मेरी शादी कर दी गई। माँ को कही तृप्ति थी। मुझमे भी कही, किसी अंश मे सब्र था, इसके अलावा चारा नही था।

हो गया सब। माँ की पूजा उसी रफ्तार से चलती रही। उसकी बीमारी भी रफ्तार लेती रही। इलाज···इलाज का पैसा जैसे खोखली नली मे से बह रहा था।

माँ का कैंसर बढता जा रहा था। एक साल खीचा। दूसरे का शायद कुछ हिस्सा खीचा।

मेरे लड़का हुआ—अलख। माँ को दूसरी तृप्ति मिली।

लेकिन वह इन खुशियो और तृप्तियो के बीच मे भी किसी दर्द से बेबाक नही हुई थी।

वह अब भी पूजा में रोती थी; लेकिन अब वह नाच नहीं सकती थी, भवानी के सामने, कृष्ण की तस्वीर के सामने।

धीरे-धीरे उसने बिस्तर पकड़ लिया।

सब-कुछ घट चुका था। बस उसके गले में वही राग था, वही दर्द था, जो हम सब को हिला देता था।

एक दिन तो यह राग, यह दर्द रुकना था। वह रुक गया। मैं पत्थर-सा सुन्न और बेसहारा रह गया।

मेरी माँ मर गई। नहीं, मीरा मर गई। मीना और मीरा।

कितनी एक थी वह! मैंने कभी दिमाग में मीना नाम को जाना ही नहीं। मेरे दिमाग में तो मीरा थी, मीरा रही, मीरा है।

रजनीशकान्त जिस दिन यह सब बता रहा था, उस दिन भी खूब रोया। जरा जानिये वह मीरा के भजनों की धुन बनाते, उसे गाते-गँवाते क्यों इतना भावुक हो जाता है? वह क्यों चाहता है कि मीरा पर एक फिल्म बनायेगा—गीत फिल्म। वह यही रट अरसे से लगाता आ रहा है।

तल्खी, तल्खी होती है। मैं रजनीशकान्त की बात नहीं कर रहा हूँ, अपनी कहिये या एक रिवाज की। मरनेवाला मरता है। हाँ, मरता है। मरनेवाला चाहे बूढ़ा हो या जवान, उसके न रहने का अफसोस तो होता ही है। आखिर मरने के बाद तो वह मिट्टी है। उसे अलग करना होता है।

अलगाव शुरू-शुरू में दु.ख देता ही है। उससे राग, उसकी यादें और साथ रहने के अनुभव जुड़े होते है। किसी का मरना आन्तरिक नुक्सान होता है। अगर कमानेवाला या काम करता व्यक्ति मरे तो दूसरे नुक्सान भी होते है।

मुझे इस बात से हमेशा चिढ़ रही कि कुछ रिवाज दोतरफा मार मारते हैं। नतीजा यह होता है कि आदमी का व्यक्तिगत शोक या प्रसन्नता का सुख गौण रह जाता है। यानी जो खास है, वह खास नहीं रहता, दूसरी परेशानी हावी हो जाती है। रिवाजों के अत्याचारों की हद हो जाती है।

मुझे अपने पहिचान के एक घर की अन्दरूनी मुश्किल याद आ रही

है। था तो वह आम घर, जहाँ पैसा आता है और कमी महसूस करवाता हुआ हर महीने को बिता देता है। बस, बिता देता है।

क्या हालत हो कि घर मे बाप की लाश पड़ी हो और बेटे-बेटी किन्ही लोगो के घर दौड़ रहे है कि कर्ज ले आयें ताकि बाप का क्रिया-कर्म किया जा सके! माँ को ताक़ीद दे दी गई हो कि अभी रोया नही जाए कि मुहल्लेवाले सुनें और आ जाएँ। फिर सारे इन्तजाम के लिए रुपये माँगे जायेंगे।

और जब कर्ज के रुपये का इन्तज़ाम हो जाता है, तब माँ भी रोती है, बेटे-बेटी भी रोते हैं। क्रिया-कर्म के बाद फिर रिवाज चलता है। रिश्तेदार तेरह दिन तक बढ़िया-से-बढ़िया खाना खायेंगे। इस खर्च के लिए अलग कर्जे की भाग-दौड और इन्तजाम।

ऐसी तल्खी रिवाजो के खिलाफ होती है। मरना है, या जश्न? जिसके घर से आदमी गया था वह शोक का खयाल करे या पैसे-टके के चक्कर मे फिरे? रिश्तेदार तो इस कदर दूसरे होकर आते है जैसे शादी की दावत मे बुलाये गए हो।

ऐसे रिवाज, रिवाज है या जहर जो न मरनेवाले का दु:ख मनाने देते है, न आनेवाले की खुशी? सारे रिश्ते ऐसे मौकों पर ताजा हो जाते हैं, चाहे इससे पहले सूखी बेल की तरह कटे हुए किसी कूड़े पर पड़े हो।

मीना मरी, तो नीना भी आई, अमलेन्दु भी आया, दूसरे भी आए। जिन्होंने कभी आकर यह जानने की कोशिश नही की कि मीना कैसे मरी? क्यों मरी? या घर आकर यह नही पूछा कि कहो, कैसे हो? वे सब रिश्तेदार आए। कान्त के ससुरालवाले तक।

और रजनीशकान्त तल्खी से भरकर कहता है—वह मातमपुर्सी थोडे ही थी! जश्न था। बदला था।

नीना मौसी नकली बड़ी बन गई थी और माँ की मौत पर ऐसे रो रही थी जैसे उन्हें अपनी छोटी बहिन से कितना ज्यादा प्यार था। और अमलेन्दु भी वक्त निकालकर घर आता था, यह जतलाने कि वह भी भाई है।

लेकिन वह जानता था कि यह सब एक ऐसा ऊपरी दिखावा है, जिसमे सब लिहाज़ मे आते थे। मुझे बरबाद भी करते थे और अहसान भी जतलाते थे।

किसका ढाढस और किसकी सहानुभूति !

यार ! वह तो मेरा कलेजा निकल जाने का जश्न था, कि मैं जब अकेले में फूट-फूटकर रोना चाहता था, उस वक्त खर्चे मे डूब रहा था और लोगो की उनकी चहमैंगोइयाँ, उनकी वक्त काटने के लिए की जानेवाली बातें सुन रहा था।

गये हो किसी की शव-यात्रा मे, या कब्रगाह तक जनाजे के साथ ? जरा अलग-अलग चलते या बैठे लोगों की बातें सुनो।

क्या मुझे नहीं पता था तेरह दिन के बाद फिर किसी को मतलब नही रहेगा मुझसे, या मेरे दर्द से ? वैसे भी, एक-दो दोस्तो को छोडकर किसी को होता है ?

फिर ऐसे रिवाजों और दिखावों के क्या मानी ?

लेकिन चलता है। ताकि आदमी दोहरी तरह से रोये बाद में—जानेवाले के लिए और खर्च किये गये रुपयो के लिए।

रजनीशकान्त कहने लगा—वास्तविक दु:ख तो मुझे तब मालूम हुआ, जब यह फालतू का सारा काम गुज़र गया।

मुझे एतराज नही था कान्त की इस कड़वाहट पर। मैंने खुद भी ऐसी हालत को जाना था, जब मेरी माँ मरी थी। मैने अपने एक परिचित घर के दु:ख और परेशानी को भी महसूस किया था, जब उनके यहाँ उनके बाप की मौत हुई थी। अक्सर सब ही महसूस करते है, क्योकि मौतें तो होती ही रहती हैं।

मैं अब नीनाबाई की बात कहूँ, जिसने मीना से हमेशा वैसा ही व्यवहार रखा जैसे वह अपने ग्राहको से रखती थी।

नीनाबाई से कभी सीधा मिलना नही हुआ और सवाल भी नही उठ सकता था, उनकी उम्र और दर्जे को देखते हुए। हाँ, उसके प्रोग्राम को

सुनने का मौका जरूर मिला। मीना के मुकाबले चाहे वह नीची पड़ती हो लेकिन वैसे, इन्द्राबाई की औलाद थी, बहुतों से बेहतर होना ही था। अब तो उम्र भी पकाव पर आ गई है। जिस्म भी चौड़ा और थुल-थुल हो गया है। गर्दन भी मोटी होकर नामालूम-सी हो गई है। लेकिन कमाल है कि गाते वक्त न आवाज मे कंपकंपी आती है, न किमी जगह सांस फूलता मालूम होता है। दो गाने तो लगातार गाकर निभा ले जाती है, उसके बाद सुस्ताने की जरूरत पड़ती है।

अमलेन्दु के डाक्टर होने से उसने मुजरा करना ना के बराबर कर दिया है। प्रोग्रामों मे जरूर जाती है। वही काफी हो जाते हैं।

पहले कभी कोठी पर सुननेवाले आते थे, लेकिन जैसे-जैसे आमदनी बढती गई, नाम मिलता गया, कोठी में गाना बन्द कर दिया।

जब से मैंने इन लोगों पर लिखने का तय किया था, मुझे कुछ लोगो से मिलना और असलियत जानना भी जरूरी हो गया था। मैं एक ऐसे शख्स से मिला जिसकी कपडे की बडी दुकान अब भी बाजार मे है। वह कभी मीना का दीवाना रह चुका था। मुझे कही से सकेत मिला तो मैं मौका ढूंढने लगा उनसे मिलने का और उनके इश्क की कहानी उगलवाने का।

यह सब जानते हैं कि आदमी आसानी से ऐसी बातें कुबूलने को तैयार नही होता, जिनमे उसका पछतावा छिपा हो। नाम देने के लिए मुझसे मना कर दिया गया था। वैसे भी मैंने ज्यादातर नाम बदले है या छिपाए हैं। असली नाम है—इन्द्राबाई का, नीना, मीना, अमलेन्दु और रजनीशकान्त का।

क्या मैं भी उपन्यास का पात्र हूँ, जब कि मैं इसे लिख रहा हूँ? हूँ, और नही भी हूँ। रजनीश का दोस्त होने के नाते लगातार उपन्यास में उपस्थित हूँ। चाहे घटनाओं के और बातचीत के क्रम इधर-उधर हुए हों, लेकिन मैं भी तो कान्त के साथ हिस्सेदार रहा हूँ। एक बात दूसरी तरह से भी है। सारी कहानी को मैं लिख रहा हूँ, घटनाओं को दे रहा हूँ पर अपनी टिप्पणियों, वर्णनों और दृष्टिकोण के साथ, इसलिए मेरे अनुभव और सोच की मिलावट आना लाजिमी है। पता नही कौन-से

लेखक होते हैं जो लिखते अपनी भाषा हैं, लिखते वक्त लोगों को अपने में उतारते बाहर लाते हैं, फिर भी तटस्थ रहने का, हू-ब-हू देने का दावा करते हैं। मुझे तो यह दावा ही छल लगता है। मैं तो कैमरा नहीं हूँ, फिर भाषा तो कैमरे की प्लेट हो ही नहीं सकती।

इसलिए मैं पात्र तो हूँ ही। मेरा असली नाम उपन्यास के लेखक की जगह है। क्या मुझे हक है किन्हीं की जिन्दगी के लिखने के बाद यह दावा करने का कि यह उपन्यास मेरा है, सिर्फ मेरा, क्योंकि मैंने लिखा है?

लिखा है तो मेरा होगा ही। क्योंकि इसमें मैं हूँ। अपने हर लेखन में होता हूँ। जो नहीं हो सकते होंगे, तो नहीं होते होंगे।

नाम की बात पर इतनी बातें लिख गया, क्योंकि तटस्थता का छल मैं नहीं फैला सकता।

वह कपड़ेवाले व्यापारी महोदय मुझसे खुले तो, लेकिन बहुत-से वादे लेकर। उदाहरण के तौर पर अगर मैं उनकी जवानी की चोरियों और गिरावटों को लिखता हूँ तो यह भी लिखूँ कि आज वे क्या हैं।

मैं क्या लिखूँ! आज तो सब जानते है कि शहर में उनकी बड़ी दुकान है। उनके पास पैसा-ही-पैसा है और प्रतिष्ठित व्यक्ति भी है। किसी वक्त मे उन्हें कपडे की दलाली से काम शुरू करना पड़ा था। उनके बहनोई साहब की कपडे की छोटी-सी दुकान थी।

वह जब नीना के चक्कर में आए थे और बाद मे उसके स्थाई चाहनेवाले बने थे, तब वह अपनी बहिन के पास रहते थे। नीना की कोठी पर गाना सुनने जाने की हैसियत तो थी नहीं। लेकिन शौक बेजा पड गया था। उस वक्त ज़रा खूबसूरत थे और देखने में अच्छे लगते थे, इसलिए यह भी वहम पाल लिया था कि नीना उनको खास चाहती है।

लेकिन नीना जिसको खास चाहती थी, वह तो कोठी पर कभी आता ही नहीं था। वह तो बहुत हिस्से में गुप-चुप था। बाद में जब अमलेन्दु हुआ, तब लोगों को पता चला वह खालिस नाच-मुजरा नहीं था, मामला दूसरा था।

वहम-वहम मे छोटे सेठ के साले साहब नीना के यहाँ जाते रहे और

कीमत चुकाने के लिए धीरे-धीरे बहिन के जेवरों पर हाथ साफ करते रहे। एक-दो जेवर सीधे नीना के हाथों और गले में पहुँच गये।

बात कब तक ढँकती! खुली तो बहनोई भी सिर पकड़कर बैठ गये। बहिन तो बरबाद हो ही गई।

वह नीना के पास गए और चाहा कि नीना कम-से-कम वो जेवर लौटा दे, जो उसके हाथ और गले में है—वह बड़ी मुसीबत में पड़ गये हैं।

नीना ने कोरा जवाब दिया—सेठ, वह मजा तो लौटा दो जो तुमने इनके बदले खरीदा था।

फिर उसने कहा था—इस तरह ग्राहकों का दिया उन्हें लौटाने लगूँ तो मैं तो रह गई वैसी की वैसी। *यह क्या कपड़े की दुकान है?*

छोटे सेठ के साले ने कहा—उस दिन नीना ने ऐसी खरी-खोटी सुनाई कि मेरा नशा हवा हो गया। वहम चूर हो गया।

वह बोले—मैंने उस दिन घृणा से कहा था, तुम औरत हो या पत्थर?

नीना हँसते हुए बोली थी—औरत! लेकिन वैसी नहीं जैसी तुम्हारे घर में है। मैं क्या हूँ, यहाँ आने से पहले नहीं जानते थे?

छोटे सेठ के साले ने कहा—वह दिन था कि आज का दिन, मैं कभी उसकी कोठी पर नहीं गया।

अब हिसाब दूसरा है। वह कभी साड़ियाँ खरीदने के लिए आती है या मँगवाती है, तो मैं हिसाब से कसकर वसूल करता हूँ। मैंने जिस तरह से मर-खपकर इस दुकान को बढ़ाया है मैं ही जानता हूँ। मेरे बहनोई तो मर गये लेकिन मैंने उनके लड़कों का व्यापार अलग जमवा दिया है। जब तक बहिन को उसके जेवर की कीमत के जेवर नहीं बनवा दिये, मुझे चैन नहीं पड़ा।

नीना का सीधा-सा हिसाब रहा है—पेशा, पेशा है। शायद यही सीख उसने अपने डॉक्टर बेटे को दी है—पेशा, पेशा है। पेशे में दया या मुलाहिजा नहीं किया जाना चाहिए। डाक्टर अमलेन्दु भी इस मायने में से डटकर फीस लेनेवाला है।

पेशा, पेशा है। फीस में मुलाहिजा नहीं होना चाहिए। दया या दयानतदारी के विचार आदमी को क़मज़ोर बना देते हैं। मुनाफ़ा बढ़ाने का एक पक्ष है मेहनत, दूसरा पक्ष है सख़्ती—सख़्ती उस हद तक कि मुनाफ़ा लक्ष्य रहे। लेकिन लक्ष्य तक के फ़ासले को तय करने के लिए दो चीज़ें और हैं—शख़्स और साधन। साधन को ज़रिये या तरीके या माध्यम कुछ भी कह सकते हैं।

सवाल यह है कि मुनाफे को लक्ष्य माननेवाले शख़्स की जीवन-दृष्टि क्या है? और कि जिन ज़रियों और जिनसे मुनाफ़ा पाया जाना है, उनसे रिश्ता किस किस्म का हो? रिश्ता हो भी, या नहीं?

नीना को लें—नीनाबाई को। कहते हैं कि अमलेन्दु जिन ठाकुर का बेटा है, उनसे कभी नीना के गहरे सम्बन्ध थे और यह तकरीबन अनुमेय-प्रमाण-पद्धति से अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि नीना कितनी ही पेशा-केन्द्रित रही होगी, उसकी जवानी में उसमें एक औरत होगी जो अपनी मर्ज़ी का चुनाव रखती होगी, कि उसके दिमाग में भी चाहे जाने योग्य व्यक्ति का कोई अक्स होगा, जिससे मेल खाते व्यक्ति को ही वह चाह सकती होगी। आखिर तो वह जवान, भरपूर दिलवाली रही ही होगी।

सुना यह है कि चाहे नीना और ठाकुर का ज़्यादा उघाड़ा और चर्चित रिश्ता न रहा हो, लेकिन वह था भावनाओं वाला।

नीना की ज़िन्दगी धोखा भी खा सकती थी, दूसरी राह पर भी जा सकती थी, अगर वह समझौता कर लेती। ठाकुर कुलपतिसिंह पुलिस के बड़े अफसर थे, वैसे भी मौरूसी जायदाद-जमीन काफी थी, इसलिए उनमें राजपूती संस्कार होने भी लाज़मी थे। अब तो ख़ैर बुढ़ापा है, लेकिन पुलिस के महकमे का खाया-पिया जिस्म अभी भी तान-तनाव की वजह से उम्र नहीं कूतने देता, हालाँकि पचहत्तर को पार की हुई उम्र, उम्र होती है।

बड़ी खोज-बीन करने के बाद सिर्फ़ यहाँ-वहाँ के सूत्र मिल सके, जिससे जुड़कर इस सवाल का जवाब मिल पाया कि नीना जैसी औरत ने अमलेन्दु को पाते ही ठाकुर से रिश्ता क्यों तर्क कर दिया, और मुझे लगता

कीमत चुकाने के लिए धीरे-धीरे बहिन के जेवरों पर हाथ साफ करते रहे। एक-दो जेवर सीधे नीना के हाथों और गले में पहुँच गये।

बात कब तक ढँकती ! खुली तो बहनोई भी सिर पकड़कर बैठ गये। बहिन तो बरबाद हो ही गई।

वह नीना के पास गए और चाहा कि नीना कम-से-कम वो जेवर लौटा दे, जो उसके हाथ और गले में है—वह बड़ी मुसीबत मे पड गये हैं।

नीना ने कोरा जवाब दिया—सेठ, वह मजा तो लौटा दो जो तुमने इनके बदले खरीदा था।

फिर उसने कहा था—इस तरह ग्राहको का दिया उन्हे लौटाने लगूँ तो मैं तो रह गई वैसी की वैसी। यह क्या कपडे की दुकान है ?

छोटे सेठ के साले ने कहा—उस दिन नीना ने ऐसी खरी-खोटी सुनाई कि मेरा नशा हवा हो गया। वहम चूर हो गया।

वह बोले—मैंने उस दिन घृणा से कहा था, तुम औरत हो या पत्थर?

नीना हँसते हुए बोली थी—औरत ! लेकिन वैसी नही जैसी तुम्हारे घर मे है। मै क्या हूँ, यहाँ आने से पहले नही जानते थे ?

छोटे सेठ के साले ने कहा—वह दिन था कि आज का दिन, मैं कभी उसकी कोठी पर नही गया।

अब हिसाब दूसरा है। वह कभी साड़ियाँ खरीदने के लिए आती है या मँगवाती है, तो मैं हिसाब से कमती वसूल करता हूँ। मैंने जिस तरह से मर-खपकर इस दुकान को बढाया है मैं ही जानता हूँ। मेरे बहनोई तो मर गये लेकिन मैंने उनके लडको का व्यापार अलग जमवा दिया है। जब तक बहिन को उसके जेवर की कीमत के जेवर नही बनवा दिये, मुझे चैन नही पड़ा।

नीना का सीधा-सा हिसाब रहा है—पेशा, पेशा है। शायद यही सीख उसने अपने डॉक्टर बेटे को दी है—पेशा, पेशा है। पेशे मे दया या मुलाहिजा नही किया जाना चाहिए। डाक्टर अमलेन्दु भी इस मायने में मे उठकर फीस लेनेवाला है।

पेशा, पेशा है। फीस में मुलाहिजा नही होना चाहिए। दया या दयानतदारी के विचार आदमी को कमजोर बना देते है। मुनाफा बढाने का एक पक्ष है मेहनत, दूसरा पक्ष है सख्ती—सख्ती उस हद तक कि मुनाफा लक्ष्य रहे। लेकिन लक्ष्य तक के फासले को तय करने के लिए दो चीजें और है—शख्स और साधन। साधन को जरिये या तरीके या माध्यम कुछ भी कह सकते है।

सवाल यह है कि मुनाफे को लक्ष्य माननेवाले शख्स की जीवन-दृष्टि क्या है ? और कि जिन जरियों और जिनसे मुनाफा पाया जाना है, उनसे रिश्ता किस किस्म का हो ? रिश्ता हो भी, या नही ?

नीना को लें---नीनाबाई को। कहते हैं कि अमलेन्दु जिन ठाकुर का बेटा है, उनसे कभी नीना के गहरे सम्बन्ध थे और यह तकरीबन अनुमेय-प्रमाण-पद्धति से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि नीना कितनी ही पेशा-केन्द्रित रही होगी, उसकी जवानी में उसमें एक औरत होगी जो अपनी मर्जी का चुनाव रखती होगी, कि उसके दिमाग मे भी चाहे जाने योग्य व्यक्ति का कोई अक्स होगा, जिससे मेल खाते व्यक्ति को ही वह चाह सकती होगी। आखिर तो वह जवान, भरपूर दिलवाली रही ही होगी।

सुना यह है कि चाहे नीना और ठाकुर का ज्यादा उघाड़ा और चर्चित रिश्ता न रहा हो, लेकिन वह था भावनाओ वाला।

नीना की जिन्दगी धोखा भी खा सकती थी, दूसरी राह पर भी जा सकती थी, अगर वह समझौता कर लेती। ठाकुर कुलपतिसिंह पुलिस के बडे अफसर थे, वैसे भी मौरूसी जायदाद-जमीन काफी थी, इसलिए उनमे राजपूती सस्कार होने भी लाजमी थे। अब तो खैर बुढापा है, लेकिन पुलिस के महकमे का खाया-पिया जिस्म अभी भी तान-तनाव की वजह से उम्र नही कूतने देता, हालांकि पचहत्तर को पार की हुई उम्र, उम्र होती है।

बड़ी खोज-बीन करने के बाद सिर्फ यहाँ-वहाँ के सूत्र मिल सके, जिस-से जुड़कर इस सवाल का जवाब मिल पाया कि नीना जैसी औरत ने अमलेन्दु को पाते ही ठाकुर से रिश्ता क्यों तर्क कर दिया, और मुझे लगता

है कि नीना की दुनियादार दृष्टि ने जो उस वक्त फैसला लिया, वह ठीक था। उसकी जिद भी ठीक थी।

कहते है कि नीना के हमल रहते ही यह सकट शुरू हुआ और यह उसी के दिमाग मे शुरू हुआ। बच्चा होगा तो उसके बाप के नाम की तलाश होगी। उसके ग्राहकों की भी कल्पनाएँ और भ्रम टूटेंगे। ज्यादातर लोग जवानी और अदाये देखने आते है, अछूती नाचनेवाली की, न कि किसी माँ की। अछूतपन की ताजगी और अल्हडपन मे और एक माँ की कृत्रिम अदायगी मे फर्क आता है। वह फर्क उसके छिपाये नहीं छिपेगा तो ग्राहको की नजरों से भी नही बचेगा। वह दूसरे दर्जे पर भी गिर सकती है। ग्राहकों और आमदनी मे गिरावट आ सकती है।

यह तो पेशे पर असर होनेवाला था। उसके अलावा खास सवाल तो उस बच्चे के भविष्य का था—चाहे वह लडका हो या लडकी।

उसने काफी सोच-समझकर कुलपतिसिंह के सामने अपनी समस्या रखी—क्या आप चाहेंगे कि जो बच्चा हो उसका नाम आपसे जुडे? और क्या आप उसे अपनायेंगे?

ठाकुर कुलपतिसिंह ने अपनी दृष्टि मे तीन सुझाव रखे—वह बच्चे को उन्हें दे सकती है। वह उसका पालन-पोषण अपने यहाँ करवायेंगे। लेकिन उसका, यानी नीना का नाम उससे नही जुडना चाहिये। बच्चे को यह पता होगा कि वह ठाकुर के ही रिश्ते मे किसी का है, जिसकी माँ उसे जन्म देते ही मर गई।

नीना ने साफ इनकार कर दिया कि वह बच्चे को अपने से अलग नही करेगी। बच्चे को पता रहेगा कि उसकी माँ कौन है।

कुलपतिसिंह ने दूसरा सुझाव दिया कि बच्चे से उनका नाम न जोडा जाए। वह नीना का और बच्चे का ता-जिन्दगी खर्चा भुगतते रहेंगे। बल्कि नीना के भविष्य के लिए वह पुख्ता इन्तज़ाम कर देंगे। लेकिन उनका और नीना का घोषित रिश्ता कुछ नही होगा।

नीना को यह भी नामंज़ूर था। बच्चे को बाप का नाम क्यों नहीं मिले? बल्कि उसका तो हक बनता है सम्पत्ति मे!

ठाकुर ने तीसरा प्रस्ताव रखा कि वह दूसरे शहर मे जाकर बस जाये;

वह वहाँ उसकी देखभाल करते रहेंगे। यहाँ रहना चाहे तो वह उनकी रखैल की तरह अपनी कोठी में रह सकती है, लेकिन उसको पेशा बन्द करना पड़ेगा। तब अगर उनका नाम भी घोषित हो जाये तो वह उसे बर्दाश्त करेंगे और निभायेंगे।

नीना ने सवाल किया कि जब वह इतना तक कर सकते हैं तो अपने ही 'हाउस' में उसे एक हिस्सा क्यों नहीं देते? उसके होनेवाले बच्चे को अपने घर का माहौल क्यों नहीं देते? अलग रहकर वह रखैल नहीं रह सकती। बच्चे को कौन-सा माहौल मिलेगा? क्या उसके नाम के साथ बाप का नाम जुड़ते हुए भी वह वास्तव में उनका बेटा कहला सकेगा? क्या सिर्फ तवायफ का बेटा नहीं रह जायेगा? दूसरी जगह रहकर क्या वह उन्हें पा सकेगी? बच्चे को बाप का लाड़ मिल सकेगा?

ठाकुर कुलपतिसिंह इससे ज्यादा नहीं बढ़ सके। तवायफ के बच्चे को वह राजपूतों का दर्जा खुद भी नहीं दे सकते थे और दिला भी नहीं सकते थे।

नीना को सकट का निस्तार दूसरे सिरे तक पहुँचने में मिला। हालाँकि उसे अपने प्यार और एक इज्जतदार घरबार होने के ख्वाब को काट-कर फेंकना होगा, पर यह अच्छा होगा कि वह अपने होनेवाले बच्चे को गुमनाम पिता की औलाद होकर जीने दे और सारी चुनौती को अपने लिए ले ले।

उसने बिना किसी गुस्से के ठाकुर कुलपतिसिंह को अपना फ़ैसला सुना दिया कि वह अपने पेशे की जिन्दगी जियेगी। उनका नाम होने-वाले बच्चे से नहीं जुड़ेगा। वह कभी भी उनकी कोठी पर आगे से नहीं आयेगी, वह भी न आयें। वह अपनी ही ताकत से लड़के को इज्जतदार जिन्दगी देने की कोशिश करेगी। लड़की होगी तो वह इस माहौल से उसे दूर रखेगी। लड़का होगा तो उसमें रास्ता बनाने की ताकत पैदा करने की कोशिश करेगी। उसकी ज़िन्दगी उसके बच्चे के लिए होगी लेकिन वह बच्चा माँ का बच्चा होगा, बाप के नामवाला बच्चा नहीं।

यह फैसला; नीना का अकाट्य फैसला था। इसके बाद उसने कुलपतिसिंह से कोई रिश्ता नहीं रखा। औसर की बात थी कि वह होने-

वाला बच्चा, लड़का हुआ। नीना का जैसा फ़ैसला था वैसा ही उसने अमलेन्दु को बनाने की कोशिश की। इसके लिए वह कितनी जूझी, कितनी सख्त हुई, कितनी दुनियादार और मुद्दे मे तेज गिनी जानेवाली हुई, यह उसके पूरे जीवन की लडाई की कहानी है।

नीना जो रही, जो है, अब भी है। उसकी जिन्दगी और उसूलो की झलकी डाक्टर अमलेन्दु मे मिलती है। मीना जैसी थी, जैसी रही, जिस जिन्दगी को जीते-झेलते गुजरी, उसकी छाया रजनीशकान्त मे है। मीना की भी एक लडाई रही। नीना की भी एक लडाई रही, अब तो उसके सामने उसका फल है। अमलेन्दु की भी अपनी लडाई है, रजनीशकान्त की भी अपनी तरह की लडाई। और मै भूल नहीं सकता कि इन्द्राबाई की भी अपनी जिन्दगी की एक लडाई थी, एक अन्त।

लेकिन क्या हर शख्स की लड़ाई अपनी और मिली-जुली नही होती? और क्या कोई नाप है जिससे हरएक को एकसार नापा जा सके? शायद हरएक के अपने-अपने नाप होगे चाहे नाप की इकाइयाँ सफलता-असफलता हो। लेकिन उस सफलता-असफलता की इकाई का भी क्या कोई मान्य माप होगा—बुनियादी माप?

नीना अब हर तरह से सम्पन्न है और सुरक्षित भी। तवायफ होते हुए भी उसने कार्यक्रमों के माध्यमों से एक ऐसी सामाजिक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है, जिसने उसके जाति के साथ लगे घटियापन से छुटकारा दिला दिया है, खासतौर से इस शहर के बाहर, और यह तृप्ति उसके लिए कम नही रही है।

यहाँ की बात दूसरी है। यहाँ लाल कोठी से उसका जातीय और पेशे का इतिहास जुड़ा है। यहाँ तो अमलेन्दु को भी डाक्टर होने के बाद लोग तवायफ का बेटा कहने से नहीं चूकते। उसके क्लीनिक में जाते सब जरूरतमन्द हैं और फिर फ़ीस देते हुए खुशामदी लहजा भी अपनाते हैं, लेकिन मौके पर कहने से नही चूकते—अरे वह! डाक्टर अमलेन्दु! है तो आखिर नीनाबाई का बेटा!

एक अजीब-सी मिलावट है समाज के ताने-बाने में। पेशे के आधार पर वर्ग या समूह पहिचान भी पा रहे हैं। लेकिन जाति की ऊँचाई-निचाई अपनी पकड़ और हस्तक्षेप बनाये हुए है। बड़े शहरों मे हालांकि नाम की प्लेटें जाति से मुक्त नही हैं, लेकिन व्यवहार में कम बाधा आती है।

क्या ऐसा माना जा सकता है कि जहाँ आधुनिक जिन्दगी अपनी रफ्तार और औद्योगिक व्यस्तता मे आदमी को उलझाए-फँसाए हुए है, वहाँ कुछ इस प्रकार के पुराने ऊँचाई-नीचाई के तराजुओं का कम चलन है ? कह नही सकता।

अमलेन्दु के कार लेने से चाहे उसके डाक्टरी वर्ग मे कम फर्क पड़ा हो, लेकिन नीना की हैसियत बढी है। वह जब कभी कार मे बाजार से निकलती है, लोग अदबदाकर आपस मे इशारे करते है। वैसे कितने ही लोग कारों पर जाते है। कौन किसकी तरफ ध्यान देता है !

नीना को यहाँ रहते हुए कभी-कभार ऐसा भी मौका पड़ा है कि ठाकुर कुलपतिसिंह से आमना-सामना हुआ है। लेकिन सलाम-नमस्ते से ज्यादा उसने ठाकुर को पहिचानने से इन्कार किया है। कुलपतिसिंह ने भी इससे ज्यादा वास्ता नही दिखाया है, चाहे वह ऐसा जानकर बने हों।

नीना को कही-न-कही जिन्दगी की उस जीत पर जरूर सतोष होगा कि उसने माँ के नाम से पहचाने जानेवाले बेटे को काबिल बनने मे मदद दी। उसने जब ठाकुर कुलपतिसिंह के तीन प्रस्तावों मे से एक भी न स्वीकार कर अपना निर्णय दिया, तब उसे अपने से कितना विद्रोह करना पड़ा होगा, यह तो वह ही बता सकती है। लेकिन क्या उसका औरत-मन आसानी से उस सुख और तृप्ति से अपने को हटा पाया होगा, जिसे उसने ठाकुर से पाया था ? क्या ठाकुर कुलपतिसिंह अपने पर सहजता से काबू पा सके होगे, जब एक झटके मे उन्हे नीना से अलग हो जाना पड़ा होगा ?

हर लड़ाई की अपनी तकलीफ होती है। हर लड़ाई का अपना नतीजा होता है। चाहे वह अपने से हो या दूसरो से।

और नीना का ही सवाल नही है, अमलेन्दु और रजनीशकान्त का भी संघर्ष कम कीमती नही है।

अमलेन्दु यहां स्टैण्डर्ड अंग्रेजी स्कूल में पढ़ा है, रजनीशकान्त साधारण सरकारी स्कूल मे। अमलेन्दु को भी उसी दुराव और उपेक्षा को बर्दाश्त करना पडता था, जिसे ऊपरी तबके के बच्चे अपने से कम स्तरवालों को देते है। रजनीशकान्त को भी इसी स्थिति का सामना करना पडता था।

मुझे पता चला कि अमलेन्दु शुरू-शुरू में अपनी क्लासो में फर्स्ट आता रहा, लेकिन बाद में उसकी जगह गिरती गई। उससे उसीके साथी ऐसे सवाल करते जिसका जवाब देना उसके लिए दूभर हो जाता। रजनीश-कान्त पर इसका प्रभाव कब पडता था! उसने अपने स्कूल में उन लड़कों का साथ ले लिया था, जिनकी आदत क्लास से बाहर रहने की ज्यादा थी।

मेरे एक मित्र हैं जो कभी अमलेन्दु के साथ पढ़े थे। उनका कहना था कि था तो वह तेज, लेकिन बड़ा जिद्दी और गुस्सेवाला था। लड़ाई-झगड़ा उसकी आदत थी—चाहे क्लास के लड़के हो, चाहे मैच मे दूसरे स्कूल के लडके। ऐसे तो बहुत-से लडके होते हैं और मैं कोई निष्कर्ष नही निकालने जा रहा हूँ कि क्योंकि वह नीना का लडका था, इसलिए ऐसा था, या रजनीश क्योंकि मीना का लडका था इसलिए वैसा था। लेकिन कई चीजें दोनों के बारे में स्पष्ट हैं और एक-सी भी है।

मिसाल के तौर पर अमलेन्दु भी बडा होते ही ऐसे हम-दोस्तो को साथ में लेने लगा जो कालेज से अलग थे और कुछ आवारा किस्म के थे। रजनीश के दोस्त भी या तो बिल्कुल आवारा किस्म के लडके थे या वे जो मुहल्ले मे नम्बरी गिने जाते थे। शुरू की जिन्दगी में शायद दोनों ने यह मान लिया था कि उनकी पढ़ाई चाहे उन्हें किसी वर्ग के साथ बैठा रही हो, उनका दर्जा वैसे ही लड़को के साथ है, जिनको सडक पर होना रहता है।

अमलेन्दु ने धीरे-धीरे इस तरह के लोगों को छोड़ा, लेकिन रजनीश नही छोड पाया।

वह आज भी कहता है, *मेरा दिल उन लोगों के साथ नहीं लगता* जो बड़प्पन का रोब-दाब रखते है, फिर भी मुझे बुलाना चाहते है। मैं इतना झुंझला जाता हूँ कि फौरन भड़क पड़ता हूँ।

वह कहता है मैंने अक्सर ऐसे लोगों को परेशान किया है। उनके

काम को उठाया है और बीच में लटकाया है, चाहे वह किसी के बँगले बनवाने का काम हो या नाटक का प्रोग्राम। मैं उनको जतलाना चाहता हूँ कि मैं भी कुछ हूँ।

जब रजनीश अपने इस रवैये को बता रहा था, तब मैंने उससे कहा था—जानते ही तुम्हारे बारे में लोगों की क्या राय बन चुकी है? यही कि तुम झूठे और लापरवाह हो। तुम अपने किसी वादे को पूरा नहीं करते। करते हो तो सामनेवाले को नाक तक उकताकर।

वह कहता है—क्या करूँ! अब आदत बन गई। मैं अब अपनी तरफ से किये गये वादे के मुताबिक गम्भीर रहना चाहता हूँ, तब भी नहीं रह पाता। उस वक्त कुछ ऐसा होता है, या हो जाता है, जिसे मैं चाहता नहीं होता।

रजनीश ठीक कहता है या गलत, इसे मैं तय नहीं कर पाया हूँ। लेकिन मैं भी उसका शिकार हुआ था।

उदाहरण के तौर पर एक घटना बताऊँगा। उसके बाद दूसरी घटना। दोनों घटनाओं के बीच में करीब डेढ़ साल का अन्तर रहा था।

मैंने एक ड्रामा तैयार करवाया था, जिसका निर्देशन मेरे हाथ में था। रजनीश उसके गीतों की धुन तैयार कर रहा था और उसे ध्वनि-प्रभाव भी जरूरी स्थलों पर देना था। ध्वनि-प्रभाव के लिए वायलिन और गिटार रखे थे। रजनीश को नाटक के मूड के मुताबिक दोनों का इस्तेमाल करना था।

वास्तव में उसने गीतों की धुन, ध्वनि-प्रभाव में दिये जानेवाले टुकड़ों का बहुत अच्छा सामंजस्य बैठाया था। रिहर्सल में वह अपने काम को इतनी खूबसूरती से सरअंजाम देता रहा था कि मैं सराहना करते नहीं थकता था। सबका अन्दाज़ा यह था कि ड्रामे की प्रस्तुति बहुत सफल जायेगी। रजनीशकान्त के सहयोग ने मुझे काफी प्रेरित किया था, इसलिए मैं छोटे-से-छोटे हिस्से पर दिलचस्पी के साथ मेहनत कर रहा था।

लेकिन ऐन प्रस्तुति के दिन रजनीश ने वही किया जो अक्सर वह करता है। इधर नाटक शुरू होने जा रहा है, संगीतकार महोदय हॉल में बैठे हैं दर्शकों के साथ। मैं उनको बुलवा रहा हूँ, अब वह हॉल में भी नहीं

हैं; किसी मित्र के साथ वह बाहर निकल गये हैं। गुस्से मे आकर मैंने निर्णय कर लिया कि बिना वाद्ययन्त्र के गीत गवाऊँगा। नाटक शुरू करवा दिया। पहला गाना बिना हारमोनियम और तबले की सगत के जैसे-तैसे निकला।

पता चलता है कान्त महाशय हॉल मे पीछे बैठे हैं, जैसे वह दर्शक हों। मुझसे किसी ने पूछा—बुला लाऊँ उनको?

मैंने कह दिया—नही। नाटक बिना ध्वनि-प्रभाव के चलेगा।

किसी ने शायद रजनीश को याद दिलाया होगा कि उन्हे ध्वनि-प्रभाव देना है तो वह अपनी जगह छोड़कर विंग मे आये।

मैं तो तमतमा रहा था, उसको पिये हुए देखा तो और तप गया। मैंने पहले ही उसे ताकीद की थी कि जब तक ड्रामा खत्म नही होगा, वह पियेगा नही। लेकिन वह हॉल के बाहर गुटके लेने ही गया था।

वह आया तो मैंने कहा—आपने बहुत अच्छा किया, आराम से दर्शकों मे बैठिये।

मैं म्यूजिक देने आया हूँ भाई, प्लेबैक इफेक्ट्स। उसने इस तरह कहा जैसे मैं भूला हुआ हूँ कि उसे इफेक्ट्स देने हैं।

मैंने व्यग्य में कहा—आपको जितने प्रभाव देने थे, वे आपने पहले ही दे दिये; अब क्या पब्लिक से 'हूट' करवाने की इच्छा है।

उसने बचाव लेते हुए कहा—तुम मुझे गलत समझ रहे हो। मेरा मकसद तुम्हारे ड्रामे को खराब करना नही था। मुझे इजाजत दो कि मै अपने यन्त्रों तक पहुँचूँ, तुमने जो मेरे ऊपर उत्तरदायित्व डाला है उसे निभाऊँ।

मैने तग आकर कहा—प्लीज़ रजनीश, अब इस तरह के दावे न करो तो अच्छा है। डाकन भी एक घर छोडती है, तुमने मुझे किसी तरह से भी नही बख्शा। जाइये और दर्शकों मे बैठिये। धन्यवाद!

यह सही है कि मैं उस वक्त बहुत अशिष्ट बोला था। वह चुपचाप दर्शकों मे चला भी गया, लेकिन कसर उसने भी नही छोड़ी थी।

नतीजा यह हुआ कि इस प्रोग्राम के बाद मैंने रजनीश से बोलना बन्द कर दिया।

उसने दोस्तों के जरिये कहलवाया भी कि उसने जानकर वैसा नही किया था, लेकिन मेरा गुस्सा ठंडा नही हुआ।

एक दिन उनने चिट भेजी :

मैं जानता हूँ कि उस दिन के प्रोग्राम के बाद से तुम अजहद नाराज हो। मैने तुमसे उस वक्त भी कहा था, मैने जानकर ऐसा कुछ नही किया। मेरे दिमाग मे आया कि मैं लोगों से मिलूँ, बताऊँ कि मैंने ही इसमें म्यूजिक दिया है, इसलिए सबसे मिलता रहा। यह प्रदर्शन और अपने को महत्त्वपूर्ण जतलाने की भावना मुझमें ऐसे मौके पर इतनी तीव्र होकर जागती है कि मैं उसके काबू मे हो जाता हूँ। पहला गीत निकलते ही मुझे होश आया और मै तुम्हारे पास पहुँच गया। तुमने मुझे धुतकार दिया। और कोई होता तो मैं उसे दस सुनाता और घर चला जाता, लेकिन तुम्हारी धुतकार सही लगी और मैं वही बैठा रहा।

तुमने मेरे माफी माँगने पर भी अपना गुस्सा शात नही किया है। खैर, शायद मेरी यही सजा है।

तुम्हारा
रजनीशकान्त

उस चिट का भी मैंने जवाब नही दिया, न मैंने रजनीश से बोलना चाहा। वह इधर-उधर मेरी शिकायत करता रहा कि मैं इतना सख्त हो गया हूँ कि दोस्ती को भी दर-किनार कर दिया है, लेकिन मुझ पर वास्तव मे कोई असर नही पड़ा।

लेकिन दूसरी घटना मे जैसे उसने मुझे परास्त कर दिया।

मैंने फिर एक ड्रामा तैयार किया था और वह मेरे पास चलकर आया था—क्या तुम मुझे अपनी गलती सुधारने का मौका नही दोगे ?

मैंने उससे साफ कह दिया था—मुझे तुम्हारे पर विश्वास नहीं है। मैं बिना ध्वनि-प्रभाव के नाटक खेलूंगा।

—तुम मुझे रिहर्सल मे आने की इजाजत तो दोगे ?

—आ सकते हो, मेरा क्या बिगडेगा तुम्हारे आने से !

ड्रामे के बारे मे बस इतनी बात हुई। वह दूसरे-तीसरे दिन रिहर्सल

में आ जाता था। चुपचाप बैठा रहता था। उसके होने से एक-दो वार बात हो ही जाती थी।

नाटक की प्रस्तुति के दिन मैंने देखा कि वह अपने वायलिन और बाँसुरी को लाया है। उसने दबाव के साथ मुझसे कहा—तुम मुझे इस वक्त मना नही करोगे, समझे ?

मैं उसे मना नही कर सका।

मुझे खयाल है कि उस रात रजनीश ने जितना सटीक और सधा हुआ ध्वनि-प्रभाव दिया था, वैसा मैंने उसे कभी देते हुए नही देखा। उसने मेरे नाटक को इतना प्रभावशाली कर दिया था कि कुछ हिस्सों पर तो मैं सिहर उठा था। दर्शकों ने तो प्रतिक्रिया दी ही थी।

मै उसको शाबाशी, या धन्यवाद देने की भी स्थिति में नही था। उसने आखिर मे मुझसे कहा था—अव तो नाराज नही हो ?

तब उसने एक तरफ जाकर दो गुटके पी थी और रास्ते में मुझे एक जगह ज़बर्दस्ती बैठा लिया था।

उसने फिर दो गुटके लिये थे और भावुकता में बोला था—तुमने मुझे इतना तासा है, इतनी तकलीफ दी है कि मैं कह नही सकता। कोई दोस्त अपने दोस्त को इतनी सख्त सजा देता है ?

मैं चुप था।

वह कहे जा रहा था—तुम मुझे गाली दे देते, जो मर्जी मे आता कहते। लेकिन तुमने मुझसे बोलना क्यो बन्द किया ? मैंने कोशिश की, फिर भी तुम मुझसे क्यो कतराते रहे ? बोलो !

मैं सुनता रहा।

तुम मुझे ओछा समझते हो। तवायफ का बेटा समझकर मुझ पर दोस्ती का अहसान रखते हो।

यह तुम्हारा सोचना है, मेरा नहीं। मैंने उसे लेकर कभी ऐसा नहीं सोचा, इसलिए गलत दोषारोपण नही सह सका।

कहो कि चाहे कुछ हो जाए, तुम मुझसे इतनी वेरुखी नही लोगे—कभी नही लोगे। सिर्फ तुम्हें तो मैं अपना समझ पाता हूँ, तुम भी···

वह और कहता जाता। उस पर नशा सवार होने लगा था। मैंने

उसे उठाना उचित समझा ।

चलो, बहुत वक्त हो गया । घर पहुँचो ! मैंने जैसे आदेश देते हुए उसे बाँह पकड़कर खड़ा कर दिया ।

वह बड़बड़ा रहा था—किसका घर ? क्या मेरा कोई घर है ? क्या मेरा कोई है—बीवी, बच्चे या और कोई ? सिर्फ तुम हो, तुम भी···

चुप-चुप चलो । हम सड़क पर जा रहे हैं। जैसे-तैसे मैंने उसको रोका।

उस रात मैं सो नहीं पाया । मुझे महसूस हुआ कि शायद मैं उसके लिए जरूरत से ज्यादा सख्त हो गया था ।

लेकिन दूसरी घटना के बाद फिर कभी ऐसा मौका नहीं आया कि मैं रजनीश से नाराज हुआ होऊँ। कभी हुआ भी तो उसकी हालत देखकर तरस आ गया ।

यह नहीं कहा जा सकता कि रजनीशकान्त अपनी ज़िन्दगी से उखड़ने मे निर्दोष है, लेकिन इसकी वजह उसका घर भी है—उसकी पत्नी, बड़ा लड़का ।

उसके घर के हालात मुझे उसी से पता लगे, जिन्हें आगे लिखूंगा । डाक्टर अमलेन्दु का ऊपरी चेहरा क्या है, अन्दर से वह क्या है, कितने हिस्से में वह पोशीदा है, कितने में वह जग-परिचित है, इसकी इत्तलाएँ मैंने कहीं-कहीं से इकट्ठी की हैं, उन्हे लिखे बगैर अमलेन्दु को नहीं समझा जा सकेगा । मैं चाहता हूँ कि रजनीशकान्त के साथ वह भी समझा जाता रहे, जैसे मीना और नीना को समझा जा सका ।

क्या मेरी समझ काफी है ? नीना और डाक्टर अमलेन्दु तो अब भी ज़िन्दा हैं, आप खुद उनको समझने के लिए उत्सुक हों तो आप अपनी तरफ से प्रयास करिये !

लाल कोठी मे डाक्टर अमलेन्दु का क्लीनिक है। छोटा शहर है, अता-पता पूछने पर आपको कोई भी बता देगा ।

-

नीना ने अमलेन्दु को शिक्षा-दीक्षा उसी ढंग से दिलवाई थी, जिस

ढग से हमारे देश का अफसरी तबका, या धनिक वर्ग का तबका अपने बच्चों को दिलाता है।

हमारे यहां की शिक्षा वैसे तो पहले भी – यानी ठेठ महाभारत-काल तक मे—वर्ण और वर्ग के अनुसार रही है, लेकिन अंग्रेजी समय ने इसे और स्पष्ट कर दिया। स्कूलो-कालेजो की भी श्रेणियां रही। राजघरानों के राजकुमार, सामन्तों के बेटे, महाधनिकों के पुत्र प्रथम श्रेणी के स्पेशल स्कूलों मे शिक्षा पाते थे, उच्च शिक्षा के लिए ऑक्सफोर्ड-कैम्ब्रिज जाते थे (अब भी जाते हैं पर अब अमरीका, रूस और यूरोपीय देश भी उनके लिए आकर्षण हैं); छोटे जमीदारो, इजारेदारो, अफसरो और वकीलों के बेटे द्वितीय श्रेणी के स्कूलो मे जाते थे; मध्यम और तीसरे दर्जे के लोगों के बच्चे तीसरे दर्जे के सरकारी स्कूलो मे शिक्षा पाते थे।

ये श्रेणियां आज भी उसी तरह से कायम है। हमारी शिक्षा की पद्धति और मॉडल पश्चिमी ढांचे के है, क्योंकि हमारे समाज मे आज भी वही सम्पन्नता-विपन्नता की सीढ़ियां मौजूद हैं। हां, कुछ लोग उछल-कर ऊपर पहुँच गए हैं, कुछ नीचे की सीढ़ियों पर आ गए है।

नीना की कल्पना थी कि अमलेन्दु या तो आई० ए० एस० अफसर बने या सफल वकील या डाक्टर। उसने शुरू से उसे ऐसे स्कूलो मे भेजा जो उच्च किस्म के थे। ऐसे स्कूलों मे भी वर्ग के अन्दर वर्ग चलता है। ऐसे स्कूलो मे भी कौन कितने सम्पन्न और ऊँचे घर से आया, इस आधार पर व्यवहार बन जाते है। अमलेन्दु मे दोहरी मानसिकता पनपी। एक तरफ वह अपने स्कूल के दर्जे से अपनी श्रेष्ठता को महसूस कर रहा था, दूसरी तरफ उसी की माँ का पेशा और उसका तवायफ के यहाँ पैदा होना उसमे हिकारतें और उपेक्षा भर रहा था।

चाहे जो भी मिल रहा हो, लेकिन अमलेन्दु के दिमाग मे यह साफ था कि उसे सफल आदमी बनना है। उसकी इच्छा डाक्टरी की तरफ गई, जिसके लिए उसने तैयारी और मेहनत मे कभी कोई कोर-कसर नही रखी।

लेकिन कालेज में पहुँचते हो उसकी एक दूसरी भूख खुली। हालाँकि मेडिकल कालेजों मे यह खुला-रहस्य—ओपेन सीक्रेट—है कि डाक्टर-

विद्यार्थियों और नर्सों या डाक्टरी पढ़नेवाली लड़कियो के इश्किया रिश्ते चलते रहते है, पर अमलेन्दु के साथ यह ज्यादा जुडा ।

मुझे पता है कि यह कमज़ोरी रजनीश की भी थी अब भी है, लेकिन उसका स्तर मानसिक ज्यादा है, शारीरिक न के बराबर । वह शायद कलाकार का सौन्दर्य-आधारित शारीरिक, रूमानी इश्क हो ।

अमलेन्दु ने कोशिश की डाक्टर लडकियों से, लेकिन टिका जाकर नर्सों पर । मेरा ख़याल है उसकी पैदाइश यहाँ भी आडे आई—उसे कोई डाक्टर-विद्यार्थी लडकी ने तवज्जह नही देनी चाही ।

अमलेन्दु मे वैसे क्या कमी थी ? वह खूबसूरत था, रहने-पहनने के रग-ढग की तरफ से भी सतर्क था, पढ़ाई में विशेष लडकों में गिना जाता था, लेकिन फिर भी वह उपेक्षा पा रहा था ।

और इसकी कमी वह वहाँ भी दूसरे दर्जे से पूरी कर रहा था -- पैसे खर्च करके या डाक्टर होने के नाते ।

और तुलना की बात यह है कि अमलेन्दु भी लडकियों को लेकर बदनामी या नामगीरी पा रहा था, रजनीशकान्त भी ।

औरत के शरीर की चाट भी दूसरी लतों की तरह होती है । अमलेन्दु को यह पड गई थी, इसलिए उसके सामने न दर्जे का सवाल था न खूबसूरती-बदसूरती का ।

मैं एक इतने बडे और सफल डाक्टर को जानता हूँ जो पचास वर्ष की उम्र मे भी इस लत को नही छोड़ सका । वह बदनाम भी हुआ । कई बार उसके ऐसे काड दवाये गये जिनमे वह निलम्बित या बर्खास्त हो सकता था । वह दिल की बीमारियो के मामले में विशेषज्ञ माना जाता था, और यह आकस्मिकता कही जा सकती है कि डाक्टर अमलेन्दु भी दिल-विशेषज्ञ है ।

उस डाक्टर को पीने की लत थी । अमलेन्दु उसकी तरह या रजनीश-कान्त की तरह धुत्त तो नहीं पीता था, लेकिन पीता जरूर था । वह जब कालेज मे था तभी से पीने और ताश खेलने लगा था, शायद उन डाक्टर-विद्यार्थियों का साथ पाने के लिए जो वैसे उसे अपना दोस्त बनाना पसन्द नही करते ।

मैं डाक्टर सारस्वत—नाम जान-बूझकर नही दे रहा—की औरत की लत का विश्लेषण करके भी नहीं कर पाया। हालांकि वह गाँव से आये हुए शहरी थे, लेकिन उनको गाँव का मानना सरासर गलत होगा। उनके चेहरे पर चेचक के गहरे दाग थे, लेकिन वह दीखते रोबीले थे। औरत, बेटे, बेटी थे, कमाई थी, फिर भी औरत के जिस्म की लत थी। यह भी पता था कि किसी दूसरे बड़े शहर मे किसी डाक्टर से उनका इश्क था जो अपने को उनकी दूसरी वाइफ भी मानती थी।

डाक्टर सारस्वत बडे विचित्र चरित्र थे। उनका गिराव भी एक झटके से आया। एक काड वह हॉस्पिटल में कर बैठे, वह दवा नही कि दूसरा अपनी प्रेमिका-पत्नी से कर बैठे, जिसकी वजह से उन्हे जेल जाना पडा।

पहले काड मे उन्होने किसी नायन जाति की रोगिणी को हस्पताल के किसी कमरे मे रात को पहुँचकर बुलवाया और उससे जबर्दस्ती कर बैठे। बात फूट गई और स्थानीय अखबारवालो ने बवडर उठा दिया।

उसकी विभागीय जाँच चल रही थी कि वह दूसरा काड कर बैठे। वह गए अपनी प्रेमिका-पत्नी के पास थे—डाक्टर-पत्नी के पास। वहाँ आपस में किसी बात को लेकर झगडा हुआ। डाक्टर-प्रेमिका ने अपने को जला लिया।

जाँच हुई, मुकद्दमा चला—छोटी अदालत से बडी अदालत तक। आत्महत्या और हत्या के बीच न्याय झूला और हत्या साबित हो गई। डाक्टर सारस्वत को सज़ा हुई—वह अब भी सज़ा भुगत रहे हैं।

डाक्टर सारस्वत के बारे में एक अजीब बात थी—वह अपनी असली पत्नी से इतना डरते थे कि उनकी रूह कांपती थी, फिर भी बिगडे, उद्धत शख्स की तरह मनमानी करते थे जो शायद उनकी मजबूरी थी, और यही उनकी पत्नी को हार माननी पड़ी थी और उसने यह समझौता बिठा लिया था कि वह घर के लिए तो जिम्मेवार है—हाँडियों में मुँह डालते फिरते हैं तो डालें।

रजनीशकान्त भी अपनी औरत से बहुत डरता है। वह कलह और किन्ही दूसरे कारणो से—जिन्हे बाद मे लिखूँगा—घर मे उतने ही

वक्त रहना पसन्द करता है, जितने वक्त रहना उसकी मजबूरी है, मतलब रात ग्यारह-बारह के बाद सुवह नौ-साढ़े नौ बजे तक।

डाक्टर अमलेन्दु की औरतोंवाली आदत की ख़बर नीना के कान तक पहुँच चुकी थी। उसने अपनी तरफ से कोशिश भी की थी कि वह इस आदत से बाज आये, लेकिन नीना का वश नही चल पाया।

नीना का कहना था कि उसकी औरत क्या कम खूबसूरत है, जो काली-कलूटी, ऐसी-वैसी नर्सो के चक्कर मे रहता है ? यह शरीफ और इज्जतदार को अच्छा थोड़े ही लगता है !

अमलेन्दु ने एक दिन भन्नाहट मे कह दिया था—क्या मैं शरीफ माना जा सकता हूँ ? क्या मैं इज्जतदार गिना जा सकता हूँ ?

नीना बेटे की इस ज़वानदारी पर सकपकाकर रह गई थी। वह उस दिन बहुत दु.खी हुई थी और सोच मे पडी रही थी। एक तरफ वह अमलेन्दु को उस तरफ जाता पा रही थी, जो उसकी कल्पना मे नही था, दूसरी तरफ उसे यह महसूस हुआ कि उसका बेटा उसकी मर्ज़ी को भी लाँघ सकता है—लाँघ रहा है। क्या वह उसे वश में ले सकती है ? शरीफ मनवाने या इज्जत दिलवाने के काबिल वह होती तो क्या वह कोताही करती ?

पर नीना अमलेन्दु के इस रुख से चौकन्नी हो गई थी। वह यह भी बर्दाश्त नही कर पा रही थी कि अमलेन्दु अपनी औरत का खयाल नही रखे, जबकि वह लड़की हर तरह से अमलेन्दु को खुश रखती थी।

एक स्थिति अमलेन्दु ने उस वक्त पैदा कर दी थी जब वह केरेलियन नर्स की तरफ तेजी से बढा था। इतना ही नही, वह यहाँ तक पहुँच गया था कि उसे वह उप-पत्नी का दर्जा दे दे।

यह भी क्या डाक्टर सारस्वत, दिल-विशेषज्ञ का अनुकरण था ?

नीना के लिए यह समस्या आफत की तरह उस पर चढ़ गई थी। उसने अमलेन्दु को हर तरह से समझाने की कोशिश की, लेकिन वश नही पड़ा।

नीना का निर्णायक रूप सामने आया था।

—अमलेन्दु, तुझे उस नर्स को छोड़ना होगा।

—क्यों ?

—मैं 'क्यों' नही जानती । तेरी आदतों के बारे मे मुझे सब जानकारी है । क्या मैंने तेरे बारे मे यह सोचा था ? इसलिए तुझे इतना पढाया-लिखाया, एक दर्जा हासिल करवाने के लिए तुझे हर सुविधाएँ दी ?

—मैंने दर्जा तो हासिल कर लिया, फिर तुझे क्यों शिकायत है ?

—लेकिन इन चक्करों से तेरी साख नही गिरेगी ?

—दूसरों की क्या गिर जाती है, वे जो भले घर के है और पैदाइशी तौर पर ऊँचे माने जाते है ? वो भी तो मेरी तरह···

नीना गुस्से से चीख पडी—वे क्या करते हैं, तुझे इससे क्या मतलब ? अगर तू करेगा तो लोग कहेंगे खून ही ख़राब था ।

—तेरे गुस्से होने से क्या मुझे अच्छे खून का समझने लगेंगे ?

—यह अच्छे खूनवाला मेरा बाप है, जो ऐसा नक्कू बना फिरता है जैसे पारसा-औलिया हो ! साख तू बना सकी जो मैं बना पाऊँगा ?

नीना की ज़बान तालू मे चिपकी रह गई । यह लडका, जिसे उसने चुनौती लेकर पाला, वह उस बाप का जिक्र कर रहा है जिसका नाम उसने उसके नाम से जुड़ने नही दिया । उसे सिर्फ माँ का बेटा रखा और हर कागज़-सनद मे बाप के नाम की जगह खाली रहने दी ।

नीना का सिर घूमने लगा और वास्तव मे वह चक्कर खाकर बेहोश हो गई । अमलेन्दु की सवेगात्मक ताव का बेकाबूपन तब हल्का हुआ, जब उसकी औरत ने धीरे-से उसको हिलाया और बोली—माँ को सम्भालिये, वह बेहोश हो गई ।

शायद अमलेन्दु को तब होश आया कि वह किससे बराबरी कर रहा था । क्या वह वास्तव मे नीना पर उबला था ? या अपनी कमजोरी पर ? यह वह सब उस घुटन और उपेक्षा की भड़क थी जो उसमे किसी चरबी की तरह जमी हुई थी, जो जब-तब कोंचे जाने पर पिघल पड़ती थी।

जैसे-तैसे इस तनाव मे कितने दिन बाद ढील आ सकी । नीना ने न बोलने और उससे खामोश रहने का रुख अपना लिया था । वह उससे भी चुप हो गई थी और बहू से भी । घर में एक कटाव ठहर गया था

जैसे हरएक को अपने-अपने से काम था, किसी को दूसरे से वास्ता नही था।

सवाल हो सकता है कि क्या मैं इस घटना के वक्त उस घर मे था जो दोनों के बीच हुए सम्वादों और टकरावो को देख रहा था ? मैं नही था, ऐसी खिंची स्थितियों को अक्सर लोग अपने घर में ही रखते है, लेकिन ऐसी स्थितियां अनुभव के बाहर की तो नहीं होती ! मैं मान सकता हूँ कि नीना और अमलेन्दु की केरेलियन नर्स को लेकर हुई टकराहट इसी के आस-पास रही होगी। ऐसी टकराहटो मे हमले-प्रति-हमले ही तो होते है ! समझौता भी निकलता है। मैं यह भी मानता हूँ किसी की घटना हमारी अपनी घटनाओं को खीच लाती है। क्या ऐसे तनाव आजकल रोजमर्रा की ज़िन्दगी मे भुगतने नही पडते ?

लेकिन ऐसी टकराहटो मे घटा-बढाकर समझौता बैठाने का भी माद्दा होता है। नीना की चुप्पी और बेरुखी ने अमलेन्दु के निर्णय को हिला दिया। वह निर्णय था या जिद, या किसी अभाव की पूर्ति या विद्रोह, तय नही हो सकता। पर उसने उस केरेलियन नर्स से दूर होना शुरू कर दिया था और उसको किसी तरह के आश्वासन या वादे देने बन्द कर दिये थे। जब तक उससे दोस्ती चली तब तक अमलेन्दु की नज़र दूसरी किसी पर पड़ गई थी और अब वह उसको इस्तेमाल करने की फिराक मे था।

मीना के मरने के बाद उसके और रजनीशकान्त के सरक्षक, रजमीश के साजिन्दे बाबा, अपने बेटे के पास चले गये थे। उनका कहना था कि जब मीना बेटी नही रही तो अब क्या रहना !

रजअीश ने बताया था कि वह उस दिन उन पर बहुत नाराज हुआ था। उसने गुस्से मे कहा था—जिस बेटे को आप गाली देते थे, उसी के पास जाएँगे ?

उनका बहुत अजीब-सा जवाब था—गाली तो मैं इसलिए देता था कि उसने मीना के साथ ज्यादती की थी। अब वह नही रही, तो किसकी ज्यादती और किसके साथ !

आपने तो माँ की और मेरी देखभाल करने की चुनौती ली थी। क्या अपने उस बेटे के पास जाते हुए शर्म महसूस नहीं कर रहे हैं? यह रजनीश का सवाल था जो अन्दर से तिलमिला रहा था।

उन्होंने बड़े शान्त लफ्जों मे कहा था—मैं जानता हूँ कान्त कि तुम मेरे बेटे के नाम से नफरत करते हो। तुम्हारा नफरत करना लाजमी है। लेकिन सोचो, तुम्हारी शादी हो गई, तुम्हारे बच्चा हो चुका, अब भी क्या यहाँ मेरी जरूरत है? रही मेरी शर्म या हार या बेशर्माई जो भी कहो, वह मेरे लिए कोई असर नही रखते।

आप यह क्यो नही कहते कि आपका खून है उस बेटे मे, इसलिए वह कितना भी गिरा हो आपके लिए माफ करने लायक है? रजनीश ने उसी तैश मे कहा था।

तुम ऐसा समझ लो। तुम भी ठीक हो सकते हो। उन्होने उसी धैर्य को बनाये रखते हुए कहा था।

मेरे सामने अगर वह पड जाये तो उसकी चमड़ी उधेड़ दूँ। कमीना! कुत्ता! रजनीश आपा खो रहा था।

साजिन्दे बाबा उसके गुस्से को गिराने के लिए उसी स्वर में बोल रहे थे जैसे वह उससे तब बोलते थे, जब वह बड़े होकर भी जिद करता था, वह उसे मनाते थे—कान्त, तुम अपने को क्यों पागल करते हो? तुम्हारे गाली देने या उसको मार डालने से भी उसकी वह कमीनियत तो नही धुल जायेगी, जिसने मीना की जिन्दगी को ले लिया। तुम्हें क्या दुख है कि तुम उसे बाप नही कह सकते? अगर यह दुख है तो नही होना चाहिए। आज जो तुम हो, अपनी आज़ाद जिन्दगी जी रहे हो, वैसी नही जी पाते। मैं जा रहा हूँ, तो मुझे क्या खोना है? मेरी सारी तो कट गई, अब तो मिट्टी किनारे लगनी है।

रजनीश ने बताया कि साजिन्दे बाबा को वह नही समझ पाया। उसके हिसाब से उन्हे अपने बेटे के पास हर्गिज नहीं जाना था। फिर वह अपने-आप कहता—अच्छा हुआ चले गये, मैं अगर रखता भी तो क्या मेरी औरत उन्हे चैन से रहने देती? जब अपने घर मे मैं ही चैन से नहीं रह सकता तो वह क्या रह पाते!

कई साल वाद साजिन्दे वावा आए थे और रजनीश ने मुझे उनसे मिलवाया था। उसने उन्ही के कहे हुए वाक्यो का ताना कसा था—वावा आप तो अपनी मिट्टी किनारे लगवाने गये थे?

मुझे रजनीश का यह ताना अच्छा नही लगा था; लेकिन साजिन्दे वावा पर जैसे उसकी किसी वात, तुर्श या तीखी वात का असर ही नही होता था।

वह बोले थे—मौत अपने हाथ मे होती तो लोग उसका तमाशा वनाकर रख देते। जरा-सी तकलीफ होती कि फट से उसे बुला लेते।

मैंने वातावरण को हल्का करने के लिये कहा था—और अगर ज़िन्दगी हाथ में होती तो?

वह हँसे थे—फिर तो लोग और तमाशा करते। दिन मे दस वार मरते, दस वार जिन्दा होते। मौके तो दिन मे आते ही है।

उनके वेटे के बारे मे जानने की मुझे पड़ी थी, मैंने गोलमोल ढग से पूछताछ की।

—अब तो आपके वेटे का बिज़नेस काफी बढ गया होगा?

—हाँ, रुपया तो वढा है, कारोबार का फैलाव भी बढ़ा है, वस वह सिकुड़ गया है। किसी चीज़ से वास्ता ही नही, न घर से, न बच्चों से, न औरत से।

—और आपसे?

—मुझसे क्या वास्ता होना था? वहाँ सारगी या तवला तो वजाना नही था। उसकी तरफ से तो घरवाले भी उसके ड्राइंगरूम मे रखे सोफ़े की अदद है। घरवालो से ज्यादा रिश्ता तो उनसे है जो उसका माल खरीदते-बेचते है। औरत को घर मे चैन नही, वच्चे अपने-अपने रास्ते पर।

—तव तो आप उकता जाते होंगे?

—मैं भी तो अपने मुताबिक जीता था। जव जो मर्ज़ी चढी, कर लिया, वस वहाँ सारंगी नहीं वजाता था; वहाँ उसका काम नही था। वहाँ तो रिकार्ड वजते थे, या रेडियो। किसी को गहरे हिलने से क्या मतलव! सब ऊपरी हुलर-फ़ुलर, छुआ-छुई। बेटा दोस्तों को लेकर आया तो हा-हू, किरकिट-सिरफिट का आँखों-देखा हाल। बेटी सहेलियों को लेकर आई

तो फैशन और सिनेमा की बात।

—पैसा तो मेरी माँ का है, जिसको हड़पकर ऐश कर रहे हैं कुत्ते और पिल्ले। रजनीश इतनी देर तक चुपचाप सुन रहा था, या शायद कुछ सोच रहा है, बीच मे घृणा उगल बैठा।

मैंने उसे डाँटा—इन्हें क्या सुनाते हो? तुम्हारी माँ का पैसा हो या खुद कमाया, अब तो वह एक गुजरा हुआ वक्त हो गया।

—क्या मैं भी गुजरा हुआ हूँ? मैं जो तुम्हारे सामने हूँ?

साजिन्दे बाबा बोले—इसे क्यों डाँटते हो भाई? इसका हर जहर वाजिब है। इसका गुस्सा और गाली सब वाजिब हैं। लेकिन मेरा तो इतना ही कहना है कि वह अपने को क्यों खराब करता है? अपनी जिन्दगी जिये। जिससे तालुक नहीं, उसके लिए अपने को बिगाड़े रखने मे क्या फायदा?

फिर वह रुककर बोले—कान्त, असलियत जान ले तो शायद तुझे तसल्ली मिल जायेगी। वहाँ एक-दूसरे से मतलब न होते हुए भी मियाँ-बीवी मे रोज झगड़ा होता है। वह उसको डटकर सुनाती है, वह उसे सुनाता है। एक-दूसरे से कोई कम नहीं होना चाहता। यह मियाँ-बीवी का रिश्ता है या जानवरों का? जानवर भी भटक-भटककर दिन से रहते हैं। यहाँ तो कुछ है ही नहीं। जैसे जनान-खाना न हो मुहल्ले की सड़क हो जिसमें पड़ोसी दम खा-खाकर लड़ते हों, फिर अपने से मग्न।

साजिन्दे बाबा बोलते-बोलते सोचने लगे। जैसे वह और कहीं हो गये हों। फिर बोले—एक वह मीना थी, एक तू है। मीना उसके गम को लेकर मर गई, तू माँ के लिए अपना दिल खरोंचता रहा। मैं सोचता हूँ अगर उसमें अक्ल होती तो उसका घर बहिश्त होता, स्वर्ग। अब दिखती है यह जो हर वक्त शिकायतों के अम्बार लगाती रहती है, खुद चाहे अपनी एक भी जिद नहीं छोड़े। और यह बेटे-बेटी हैं, जिन्हें न माँ की तकलीफ से मतलब, न बाप के हाथ बँटाने से मतलब। बाप को ही कब फुर्सत है कि बेटे-बेटी को दिल से दो प्यार के शब्द बोल दे! क्या यही जिन्दगी है?

साजिन्दे बाबा की आँखें डबडबा आई थीं। मैं नहीं समझ सका कि यह मीना के लिए थी या उस घर के लिए जो मीना और रजनीशकान्त

से बसा उनके बेटे का घर होता'।

रजनीशकान्त ने ऐसे कोई संकेत नहीं जाहिर किये, जिनसे पता चल सके कि उसने संतोष लिया या वह इस नतीजे पर पहुँचा कि उसे क्या मतलब!

लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि वह सोच रहा हो—उसके यहाँ न व्यापार है, न पैसे के अम्बार, फिर भी उसका घर क्यों उसके लिए सराय बना हुआ है? ग़लती किसकी है और कहाँ है?

आदमी सोचता क्या है, हो क्या जाता है! साजिन्दे बाबा चार दिन के लिए आये थे, अपना पुराना मकान देखने। बेटे का कहना था वह उसको बेच-बाचकर ठिकाने लगायें। नकद रुपया आयेगा तो वह व्यापार में लगा लेगा। साजिन्दे बाबा इस विचार से बिल्कुल सहमत नहीं थे। बड़े-बूढ़ों का पुश्तैनी मकान क्या बेचने के लिए हुआ करता है? व्यापार तो भट्ठी होता है, जितना झोंक दो कम पड़ेगा; बल्कि इससे भी ज्यादा आदमी की हविस होती है। उसे रुकने की जगह दीखती ही नहीं।

साजिन्दे बाबा ने अपना निर्णय बता दिया था। वह अपने जीते-जी तो बेचेंगे नहीं, उनके मरने के बाद वह चाहे बेचे या उसका कुछ भी करे। खुदवा दे नींव से!

उस दिन बाद करीब हफ्ते से ज्यादा बीत गया, लेकिन रजीनाशकान्त मुझे नहीं मिला। हफ्ते-भर मे एक बार भी न मिलना, बशर्ते कि वह शहर मे हो, रजनीशकान्त के लिए मुश्किल-सी बात थी। इसलिए मेरे सोच की भी बात थी। वह मुझे करीब बारह दिन बाद मिला होगा; अन्दाजे से लिख रहा हूँ, हो सकता है दस दिन हुए हों या पन्द्रह।

वह सुस्त था और परेशान भी। मेरे वजह पूछने पर बताई कि साजिन्दे बाबा सख्त बीमार हैं। उन्हे हॉस्पिटल में भी रखने की कोशिश की, लेकिन तीन दिन ठहरकर वहाँ से हटने की जिद करने लगे। रट यही थी कि मुझे मेरे घर मे ले चलो। मैं चारों तरफ रोगियों को देखते-देखते ज्यादा बीमार हो जाऊँगा। ऐसी जिद कि मुझे मजबूरन लाना पड़ा।

दूसरी ज़िद भी सुनो ! मैंने कहा आपके दिल मे दर्द है, इस वक्त तो अमलेन्दु स्पेशलिस्ट माना जाता है, उसे दिखा दें ।

बोले; नही, मैं उसे हर्गिज़ नही दिखाऊँगा । उन्होने मुझे बहुत बदनाम किया था । वह मुझे मीना के पास से हटाना चाहते थे । इसी ज़िद को बहाना बनाकर उन्होंने तुम लोगो से ताल्लुक तोडा था ।

रजनीश ने बताया—मैंने उनको समझाने की कोशिश की कि वह डाक्टर है, उसे फीस से मतलब । जब वह चुकायी जायेगी, फिर उसका अहसान क्या ? या उसका या अपना दुराव क्या ?

लेकिन उन्होंने तो जैसे अपनी मानने के अलावा, किसी दूसरे की मानने की कसम ले रखी हो—इलाज तो करवा लूंगा, पर नीना के बेटे से नही ।

मेरी यही समझ में नही आता कि उनकी चाह या नफरत की सीमा या दिशा क्या है ? हालांकि यही मैं अपने लिए भी कह सकता हूँ कि मेरी चाह और नफरत की सीमा क्या है ? वह अपने बेटे के पास बेइज्जती के बाद भी रह सकते हैं; लेकिन डॉक्टर अमलेन्दु को दिखायेंगे तक नहीं । यह इसलिए कि अमलेन्दु नीना का बेटा है और नीना ने उन्हे और मीना को आन्तरिक कष्ट दिया था । लेकिन मुझे ताज्जुब था कि मैं अपनी नफरत को दबाकर अमलेन्दु को दिखाये जाने के लिए कैसे दबाव डाल रहा था !

रजनीश ने बताया, उसने उन्ही के तर्क से उन्हे मनाना चाहा—जो गुज़र गया, उससे पैदा ईर्ष्या को क्यों पाले रखना ?

वह इतना कहने पर भी नहीं माने । रजनीशकान्त ने कहा—बूढे होने पर वास्तव मे अकल सठिया जाती है । उनका कहना था जिस किसी ने मीना को तकलीफ दी, वह मेरी तरफ से रिआयत नही पा सकता ।

उनकी इस बात पर मुझे बहुत हँसी आई । वह तो रोगी है, रिआयत उनकी तरफ से होगी या डाक्टर की तरफ से ? और सबसे ज्यादा तकलीफ तो मीना को उनके बेटे ने दी थी ।

उसने कहा—मुझे लगता है साजिन्दा बाबा खतरे के पास हैं और वह अपने गुज़रे हुए ज़माने में जी रहे हैं ।

मुझे आश्चर्य हुआ कि रजनीशकान्त कितनी सही और मानवीय स्वभाव की बात कर रहा था। आदमी बुढ़ापे में ज्यादातर अपने अतीत मे जीता है, अगर उसने अपने को वर्तमान के धूल-धक्कड़ में न फँसा रखा हो। मौत को नजदीक देखकर तो वह अपने इतिहास में ही जीना चाहता है—जितनी भी मियाद उसकी शेष हो।

क्या साजिन्दे बाबा यह भी कहते है कि वह अब बचेंगे नही ? मैंने रजनीश से सवाल किया।

हाँ, उन्हे ऐसा महसूस हो रहा है और यही उनकी दुविधा है। कभी वह कहते है कि मैं इसी पुश्तैनी मकान में मरना चाहता हूँ, सारंगी बजाते-बजाते या अपनी साँस की ताल के साथ, तबले के ताल मिलाते-मिलाते। कभी वह कहते है, मुझे उसके पास भेज दो—मेरे बेटे के पास। मैं उसी की तरह, उसी के बँगले में, अपने से बेखबर, घटिया ज़िन्दगियों के माहौल में मर सकूँ—वहाँ कोई किसी का नही, अपना भी नही। रजनीशकान्त ने मुझसे पूछा—बताओ ! इस हालत मे उन्हे उस कसाईखाने में कैसे भेज दूँ ? अगर बीच रास्ते मे मर गये तो ? क्या तुम उन्हें समझा सकोगे ? उसने मुझसे पूछा।

चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। मै रजनीश के साथ हो लिया। लेकिन रास्ते-भर सोचता रहा कि मै उन्हे क्या समझाऊँगा ? एक डुले हुए आदमी को कोई क्या समझा सकता है ?

दोनों पहुँचे। मै इस मुहल्ले मे पहली बार आया था। छोटे आदमियों का गन्दा मुहल्ला था। दोपहर का वक्त। औरतें अपना-अपना काम लिये धूप सेंक रही थी। बच्चे गलियों मे धूल-मिट्टी मे गेंद खेल रहे थे। कुछ लड़के तीन लकड़ियों को गाडकर एक तख्ते की फट्टी से क्रिकेट खेल रहे थे। साफ था कि उन्हें न विकेट मुहैया था, न बैट। कामगरों के मुहल्लों मे अमीर खेलों की नकल ही मिल सकती थी। लेकिन धूप थी कि हर कच्चे घर और शख्स पर पड रही थी।

दोनों गली पार करते उस पुराने मकान तक पहुँचे जो साजिन्दे बाबा का था—मैला-कुचैला, टूटा-फूटा। अन्दर घुसे तो पाया साजिन्दे बाबा खाट पर पडे थे। पड़ोस के दो-तीन लोग उनके पास बैठे थे। वे सब

भी उन्हीं की उम्रों के थे। एक बीस-इक्कीस बरस की लड़की जरूर थी, जो चूल्हे के पास बैठी कुछ बना रही थी।

रजनीश ने जाते ही पूछा—कैसे हैं बाबा ? यह भी आएँ है। उसने मुझे आगे किया।

बाबा ने मुझे देखा और खाट पर जैसे सिकुड़ने की कोशिश की, गोया वह मेरे बैठने की जगह कर रहे हों। बैठे हुए लोगों में से एक उठकर बाहर गया और उसने किसी को पुकारा कि पड़ोस से हमारे बैठने के लिए कुर्सी ले आये। एक स्टूल था, जिसे खिसकाकर हमारे लिए रख दिया।

तुम तो बैठ जाओ, दूसरा स्टूल अभी आ रहा है। साजिन्दे बाबा ने मुझसे कहा था। तब तक हत्या-टूटी एक कुर्सी और ले आई गई थी। हम दोनों बैठ गये।

मुझे पता नहीं चला कि आप बीमार हो गये। मैंने जैसे अपने न आ पाने की सफाई दी हो।

वह बोले—मुझे भी नहीं पता था कि आते ही बीमार हो जाऊँगा, वरना क्यों आता ? इसको तकलीफ हो गई। उनका मतलब रजनीश से था।

दवा से कुछ फ़ायदा दीख रहा है ? मैंने पूछा।

पता नहीं चलता। और अब जिस्म भी तो इतना बे-असर हो गया है कि जतलाता नहीं। साजिन्दे बाबा को लम्बी खाँसी उठी। खाँसी में गला घरघरा रहा था। उनकी आँखों में अजीब-सा पीलापन था। वैसे वह ढाँचा थे ही।

तूने इन्तजाम किया ? उन्होंने रजनीश से पूछा।

हाँ, मैं दवा लाया हूँ। रजनीश ने कैप्सूल और गोली का पत्ता जेब से निकालकर सिरहाने रखा। वह बताना चाह रहा था कि उन्हें कैसे लिया जाना है, इससे पहले बाबा ने अपनी छेड़ दी।

मैं दवा के लिए नहीं पूछ रहा था। मैंने तुझसे मेरे वहाँ पहुँचने का बन्दोवस्त करने के लिए कहा था।

ऐसी हालत में कैसे जा सकियेगा ? पता दे दीजिए, आपके लड़के को तार दे दूँगा। रजनीश के कहने में झुंझलाहट थी।

वह फ़ौरन बोले—नही, तार में पैसे नही बिगाड़ने। उसे क्या फ़ुर्सत होगी यहाँ आने की! बिजनेस में घाटा लग जायेगा। उसका मिनट-मिनट कीमती है। वह आयेगा मेरे मरने के बाद यह मकान बेचने। नही भी आयेगा तो वहीं से सौदा कर-करा लेगा।

ऐसी हालत मे मैं आपको नही भेज सकता। रजनीश ने अपना फ़ैसला वज़न देते हुए सुना दिया।

मैंने भी उसके फ़ैसले का समर्थन करते हुए कहा—बाबा, आप इस हालत मे नही जा सकते। हम लोग, यह सब, क्या दूसरे है?

ऐसा मैंने अपनत्व दर्शाने के लिए कहा था। साजिन्दे बाबा ने गहरी साँस भरकर छोड़ते हुए कहा था—यही सब तो तकलीफ देता है। जिसको होना चाहिए, उसका खून भी रगत बदल चुका; जिनको दूसरा होना चाहिए, वे बिना रिश्ते के रिश्ता जोड़े बैठे हैं। फ़र्क़ है ना? लेकिन मैं तुम लोगों, इन सब को और इस कान्त को तककीफ क्यो दूँ? इसलिए कि तुम मुझे चाहते हो?

रजनीश भन्ना पड़ा—मैंने आपसे कह दिया, इस तरह की छोटी बात मत किया करिये। मैं आपकी ज़िद से परेशान हूँ।

मैंने आँखों से रजनीश को धमकाना चाहा। उसे ऐसे मौके पर सख़्त नही बोलना चाहिये।

साजिन्दे बाबा चुप हो गये। जैसे कुछ सोचने लगे। रजनीश उठा, कोने में रखे घडे के पास से गिलास मे पानी भर लाया। उसने कैप्सूल उठाया और बोला—इसे लीजिये।

उसने साजिन्दे बाबा को सहारा दिया। मैंने भी उसकी मदद की। तकरीबन जबरदस्ती उन्होंने उस कैप्सूल को घूंट के साथ निगल लिया।

उन्हें फिर लिटा दिया गया। मुझे लगा बाबा रजनीश के तेज बोलने से डर गये।

उसने कहा—घण्टे-भर बाद यह गोली लेनी है। इसके बाद फिर कैप्सूल लेने हैं। डॉक्टर ने कहा है दो दिन मे आराम हो जाना चाहिये।

रजनीश का तसल्ली देना मुझे अच्छा लगा। मैं चाहता था कि साजिन्दे बाबा से कुछ बात करता, लेकिन वह चुप्पी साध गये थे।

थोड़ी देर तक वैसा ही माहौल बना रहा। रजनीश ने कहा—हम चलें। रात को फिर आएँगे।

उन्होंने गर्दन हिलाकर जाने की इजाजत दे दी। हम मुश्किल से गली तक पहुँचे होंगे कि वह लड़की जो चूल्हे के पास बैठी थी, दौड़ती हुई आई। उनकी तबीयत बिगड़ गई है। वह आपको बुला रहे हैं।

हम उल्टे पाँव लौट आये।

देखा कि साजिन्दे बाबा की साँस तेज हो गई है। पास बैठे लोग खड़े हो गये हैं। उनमें से एक जो बूढ़ा था और जिसने काफी मौतें देखी होंगी, उसने अलग ले जाकर कहा—बाबू, आप वहम में मत पड़िये। यह ठीक नहीं हैं, जानेवाले हैं।

हम सन्न-से रह गये। हमें क्या पहचान कि कौन-सी हालत अच्छी दिखती हुई भी बुझने की हालत होती है।

तुम ठहरो, मैं डॉ० अमलेन्दु को बुलाकर लाता हूं। रजनीश ने कहा। लेकिन साजिन्दे बाबा के कान में यह नाम पड़ गया था।

वह ताकत लगाकर बोले—नहीं! वह यहाँ नहीं आएगा। तुम उसके सामने नीचे नहीं होगे।

फिर वह बकने लगे—उसने मेरी मालकिन को, मेरी बेटी को सताया है। उस नालायक ने मीना की जान ली। उसे तार मत देना। उसकी शक्ल तुम मत देखना। कमीना! अहसान-फ़रामोश!

वह अपने लड़के के लिए कह रहे थे। वह उसे ताकत लगाकर गाली दे रहे थे। मैं समझ रहा था उनके दिमाग में सिर्फ मीना है। सिर्फ मीना।

थोड़ी देर में उनका बड़बड़ाना थमा। वह जैसे फिर होश में आए। हमें देखकर बोले—लौट आए? अब वक्त ज्यादा नहीं है। किसी डाक्टर को नहीं बुलाना।

फिर वह सुस्ताने लगे, जैसे सोच रहे हों।

तब वह थोड़ी देर बाद बोले—कान्त, एक तकलीफ़ करेगा?

बोलिये! कान्त अब सुस्त हो चुका था। मुझे भी लग रहा था कि वास्तव में इनके बचने की गुंजाइश नहीं है।

मेरा सारंगी और तबला मेरे पास ले आ!

मैं ताज्जुब कर रहा था उन पर। लेकिन उनकी मर्ज़ी करनी थी। रजनीश सारंगी उठा लाया, मैं तबले की जोड़ी। दोनों साज़ कपड़े में बँधे हुए थे। उन पर गर्द जमी हुई थी।

मेरे पास रख दे।

हमने रख दिये।

उन्होंने दोनों पर हाथ फेरा, जैसे किसी बच्चे को सहला रहे हों। फिर बोले—मेरे तकिये के नीचे उस नालायक का पता रखा है। भेज देना उसे तार कि मकान अब खाली है, बेच ले।

रजनीश ने टोका—बाबा, आप उल्टी-सीधी बातें नहीं करिये। मुझे इजाज़त दीजिये कि मैं डाक्टर को बुला लाऊँ। उसे नहीं लाऊँगा।

मुझे रजनीश की विनय सही लगी। नाजुक वक्त के उपयुक्त।

साजिन्दे बाबा अपने साजों पर हाथ फेरे जा रहे थे। जैसे वह बिना बजाये उन्हें सुन रहे हों।

उनकी नज़रें रजनीश पर अटकी थीं। एक बार फिर उनकी साँसें तेज़ हुईं। साँस अब ऊपर चढ़ रही थी।

उस बूढ़े ने हमसे कहा इन्हें नीचे फर्श पर लो!

हमने फ़र्श पर लिटा दिया। उसे बूढ़े ने दूसरे से कहा—जाओ, घर से गंगाजल ले आओ।

वह बाहर चला गया। वह लड़की अब अन्दर आ गई थी। वह किसी पड़ोसी की ही लड़की थी।

गंगाजल आ गया था। रजनीश ने उसे कटोरी से ही बाबा के मुँह में डालना शुरू कर दिया था।

साजिन्दे बाबा को हिचकी आई। उनके मुँह से स्पष्ट शब्द निकले—मीना!

फिर उनकी आँख पलट गई।

मैं सोच रहा था अगर हम चले जाते तो क्या होता? बूढ़े के अनुभव ने ही हमें खतरे की नजदीकी की जानकारी दी थी।

कहना न होगा कि मैं उन बन्द साजों को देख रहा था और सामने पड़े हुए बेजान साजिन्दे बाबा को।

लेकिन इतना अन्दाजा तो कोई भी लगा सकता है कि जब वह उन साजों पर हाथ फेर रहे थे, तब जरूर उनकी आवाजें भी सुन रहे होंगे। और उन्होंने मीना को भी देखा होगा, क्योंकि वह रजनीश को एकटक देख रहे थे।

पर जब आदमी चुप हो तो कयास ही लगा सकता है, लेकिन कयास भी तो सबूतों पर खड़ा होता है।

अमलेन्दु और नीना के बीच के तनाव ने दोनों पक्षों को प्रभावित किया। नीना ने जान लिया कि उसका रौब और आज्ञा एक रेखा तक माना जायेगा, उसके बाद उसका बेटा उसे गिनने को तैयार नहीं है। इसीलिए नर्स के मामले में तेज़ प्रतिरोध करने के बाद उसने चुप्पी साध *ली थी। अमलेन्दु भी शायद अपने चुनाव और अपनी मनमानी के* लिए प्रकट रूप से माँ के सामने पहली बार ही इस तीव्र *विरोध से खड़ा हुआ था।*

लेकिन ऐसी स्थिति में जैसा अक्सर होता है, वही हुआ। नीना ने रेखा खींच दी कि कुछ भी हो, उसके जिन्दा रहते घर में कोई भी दूसरी औरत उस हैसियत से नहीं आयेगी, जिस हैसियत से एक बार बहू *(अमलेन्दु की पत्नी) आ चुकी है।*

अमलेन्दु इस तथ्य को समझ गया कि बाहर वह कुछ भी करे, खुले-आम, ख़ास तौर से घर की व्यवस्था में उसे हलचल मचाने की जरूरत नहीं है। इसलिए आनेवाले वक्त में एक अप्रत्यक्ष, अलिखित समझौता ठहर गया। घर स्थिर रहेगा। उसका अतरंग किसी भी तब्दीली का असर नहीं लेगा। उसकी सर्वेसर्वा माँ रहेगी, लेकिन बाहर वह अपनी चाल से चलेगा। वह डॉक्टर होने के नाते अपने वर्ग के तौर-तरीके ले, पार्टियों में 'ड्रिंक' ले, क्लब में ताश खेले, रात्रि-भोजों में जाये, जन्म-दिन, शादी-ब्याहों के उत्सवों में जाये, यह उसका अपना समाज है।

साफ हो गया कि घर स्थिर रहेगा, बाहर कुछ भी दौड़े या चले। और इस स्थिरता में अमलेन्दु की पत्नी भी शामिल थी। वह अपनी

जगह जानती थी। अमलेन्दु की बाहरी जिन्दगी की वह दोस्त या 'मिसेज डॉ० अमलेन्दु' नही हो सकी थी; वह हो भी सकती थी, लेकिन न नीना ऐसे बदलाव के लिए तैयार थी, न अमलेन्दु अपनी सोसायटी के काबिल उसको समझने के लिए तैयार था। वह ऐसे घर की नही थी कि माँ-बाप के घर से बराबरी या नयी हवा के संस्कार लिये हुए आई हो।

इसलिए उसे अपनी हालत मे सतुष्ट होना था। हल्का-सा यह गर्व कि वह कानून और सामाजिक रूप से डॉक्टर की पत्नी है, उसके लिए काफी था, क्योंकि इससे ज्यादा की गुजाइश नहीं थी।

यानी उसे डॉक्टर अमलेन्दु की सेवा करते रहना था, चाहे वह वैसा चाहे या न चाहे। उसे बच्चों को तैयार करना था, स्कूल भेजना था, उनकी देखभाल करनी थी, घर मे उनको यह ज़ाहिर करते रहना था कि वे डॉक्टर के बेटे-बेटी हैं, उन्हे अपने 'डैडी' की तरह बड़ा आदमी बनना है। यह भी कैसा मोह था, जो रिक्त जिन्दगी के बावजूद भराव का भ्रम लिये हुए था!

यह स्थिति ज्यादातर उन पत्नियों की होती है, जिन्हें उनके मर्द अपने पैमाने से नापकर नाकाबिल करार कर देते हैं।

बराबरी की 'ताल-ठोक' दूसरी स्थिति पैदा करती है। मैं एक आई० ए० एस० अफसर की ज़िन्दगी जानता हूँ, जिनकी मिसेज भी उन्ही के तबके की थी—पढी-लिखी, खुद भी लेक्चरर। लेक्चरर महोदया के पिता इंजीनियर थे और उनको अपनी बेटियो से ज्यादा स्नेह था। वह स्नेह आपत्तिजनक लाड़ और पक्षपात तक पहुँचता था। वह अपनी दोनों बेटियो को अपने से ज्यादा दूर नही करना चाहते थे।

आई० ए० एस० अफसर को यह स्थिति बाधक लगती थी। उनकी निजी जिन्दगी मे किसी का क्यों हस्तक्षेप हो? और उनकी मिसेज़ अपने निजीपन को अपने पिता की सम्पन्नता का सहारा देकर इतना दबावपूर्ण क्यों बनाये कि वह बार-बार, छोटी से लेकर बड़ी रुचियो पर पति से टकराये?

आई० ए० एस० महोदय ने इस रोज की टकराहट से बचने के लिए अपने को किसी दूर के राज्य में रखे जाने के लिए सिफारिश करवाई।

लेकिन इतना अन्दाजा तो कोई भी लगा सकता है कि जब वह उन साजों पर हाथ फेर रहे थे, तब ज़रूर उनकी आवाज़ें भी सुन रहे होंगे। और उन्होंने मीना को भी देखा होगा, क्योंकि वह रजनीश को एकटक देख रहे थे।

पर जब आदमी चुप हो तो कयास ही लगा सकता है, लेकिन कयास भी तो सबूतों पर खड़ा होता है।

अमलेन्दु और नीना के बीच के तनाव ने दोनों पक्षों को प्रभावित किया। नीना ने जान लिया कि उसका रौब और आज्ञा एक रेखा तक माना जायेगा, उसके बाद उसका बेटा उसे गिनने को तैयार नहीं है। इसीलिए नर्स के मामले में तेज प्रतिरोध करने के बाद उसने चुप्पी साध ली थी। अमलेन्दु भी शायद अपने चुनाव और अपनी मनमानी के लिए प्रकट रूप से माँ के सामने पहली बार ही इस तीव्र विरोध से खड़ा हुआ था।

लेकिन ऐसी स्थिति में जैसा अक्सर होता है, वही हुआ। नीना ने रेखा खींच दी कि कुछ भी हो, उसके जिन्दा रहते घर में कोई भी दूसरी औरत उस हैसियत से नहीं आयेगी, जिस हैसियत से एक बार बहू (अमलेन्दु की पत्नी) आ चुकी है।

अमलेन्दु इस तथ्य को समझ गया कि बाहर वह कुछ भी करे, खुले-आम, ख़ास तौर से घर की व्यवस्था में उसे हलचल मचाने की ज़रूरत नहीं है। इसलिए आनेवाले वक्त में एक अप्रत्यक्ष, अलिखित समझौता ठहर गया। घर स्थिर रहेगा। उसका अंतरंग किसी भी तब्दीली का असर नहीं लेगा। उसकी सर्वेसर्वा माँ रहेगी, लेकिन बाहर वह अपनी चाल से चलेगा। वह डॉक्टर होने के नाते अपने वर्ग के तौर-तरीके ले, पार्टियों में 'ड्रिंक' ले, क्लब में ताश खेले, रात्रि-भोजों में जाये, जन्म-दिन, शादी-ब्याहों के उत्सवों में जाये, यह उसका अपना समाज है।

साफ़ हो गया कि घर स्थिर रहेगा, बाहर कुछ भी दौड़े या चले। और इस स्थिरता में अमलेन्दु की पत्नी भी शामिल थी। वह अपनी

जगह जानती थी। अमलेन्दु की बाहरी जिन्दगी की वह दोस्त या 'मिसेज डॉ० अमलेन्दु' नही हो सकी थी; वह हो भी सकती थी, लेकिन न नीना ऐसे बदलाव के लिए तैयार थी, न अमलेन्दु अपनी सोसायटी के काबिल उसको समझने के लिए तैयार था। वह ऐसे घर की नही थी कि माँ-बाप के घर से बराबरी या नयी हवा के संस्कार लिये हुए आई हो।

इसलिए उसे अपनी हालत मे संतुष्ट होना था। हल्का-सा यह गर्व कि वह कानून और सामाजिक रूप से डॉक्टर की पत्नी है, उसके लिए काफी था, क्योंकि इससे ज्यादा की गुंजाइश नही थी।

यानी उसे डॉक्टर अमलेन्दु की सेवा करते रहना था, चाहे वह वैसा चाहे या न चाहे। उसे बच्चों को तैयार करना था, स्कूल भेजना था, उनकी देखभाल करनी थी, घर में उनको यह जाहिर करते रहना था कि वे डॉक्टर के बेटे-बेटी है, उन्हें अपने 'डैडी' की तरह बड़ा आदमी बनना है। यह भी कैसा मोह था, जो रिक्त जिन्दगी के बावजूद भराव का भ्रम लिये हुए था!

यह स्थिति ज्यादातर उन पत्नियों की होती है, जिन्हें उनके मर्द अपने पैमाने से नापकर नाकाबिल करार कर देते है।

बराबरी की 'ताल-ठोक' दूसरी स्थिति पैदा करती है। मैं एक आई० ए० एस० अफसर की जिन्दगी जानता हूँ, जिनकी मिसेज भी उन्ही के तबके की थी—पढ़ी-लिखी, खुद भी लेक्चरर। लेक्चरर महोदया के पिता इजीनियर थे और उनको अपनी बेटियों से ज्यादा स्नेह था। वह स्नेह आपत्तिजनक लाड़ और पक्षपात तक पहुँचता था। वह अपनी दोनों बेटियों को अपने से ज्यादा दूर नही करना चाहते थे।

आई० ए० एस० अफसर को यह स्थिति बाधक लगती थी। उनकी निजी जिन्दगी में किसी का क्यों हस्तक्षेप हो? और उनकी मिसेज अपने निजीपन को अपने पिता की सम्पन्नता का सहारा देकर इतना दबावपूर्ण क्यों बनाये कि वह बार-बार, छोटी से लेकर बड़ी रुचियों पर पति से टकराये?

आई० ए० एस० महोदय ने इस रोज की टकराहट से बचने के लिए अपने को किसी दूर के राज्य में रखे जाने के लिए सिफारिश करवाई।

यह सिफारिश मान ली गई।

उनका ख़याल था कि दूर जाकर वे दोनों मय दो बच्चों के अपनी पारिवारिक ज़िन्दगी जी सकेंगे।

यह घटना बराबर के अहम् रखनेवाले किसी भी परिवार का अन्दरूनी ब्यौरा बन सकती है। फर्क पड़ेगा तो अलगाव के विषय में, वह नगण्य भी हो सकता है। वह जरा तीखा भी हो सकता है, लेकिन पति-पत्नी के अलगाव का कारण अहम् और शायद बराबरी और शायद अविश्वास और शायद हीनता या अतिरिक्त आत्म-विश्वास ही रहता है।

—सुना है कि आपने दूसरे स्टेट में ट्रांसफर लेने का ऑप्शन दिया है।

—हाँ, वह मंजूर भी हो गया है।

—आपने ऑप्शन देने से पहले मुझसे क्यों नहीं पूछा?

—जरूरत नहीं समझी।

—जरूरत थी, लेकिन आप समझते है कि मैं आपकी हर ज्यादती को मान लूँगी। नो, यू शुड नॉट एक्सपेक्ट फ्रॉम मी अब्लाइण्ड डिटो।

—सवाल मेरी भी तो च्वाइस का है।

—वट यूअर कैन नॉट बी माइन।

—तब तुम्हारी च्वाइस मेरी कैसे हो सकती है?

—आई शैल नॉट लीव माई सर्विस ऐंड दिस प्लेस।

—मैं हिन्दी समझ सकता हूँ। इंगलिश में बोलकर मुझ पर क्या जतलाना चाहती हो?

—गुस्सा, फोर्स ऑफ माई आर्ग्यूमेण्ट।

—वह तो वैसे भी जाहिर करती रहती हो। लेकिन तर्क है कहाँ? आर्ग्यूमेण्ट नहीं है, तुम्हारी अपनी ज़िद है।

—तुमने मेरे साथ स्ट्रेटेजी खेली है। तुम मुझे मेरे पेअरेंट्स से अलग करके, मेरी नौकरी छुड़ाकर अपने दबाव में रखना चाहते हो, ताकि मैं तुम पर और तुम्हारी मर्सी, आई मीन तुम्हारे रहम पर पलूँ, अपनी आजादी छोड़ दूँ।

—मैं फैमिली की एडजस्टेड और समझौता रखनेवाली ज़िंदगी चाहता

हूँ। हमारी रोजमर्रा की किच-किच का बच्चों पर असर पड़ता है।

—बच्चों का या एडजस्टमेंट का बहाना मत लो। तुमने मेरे पर चालाकी खेली है। यू वाण्ट टु प्ले अपॉन मी।

—मैं जाऊंगा। तुम अपना फ्यूचर सोच सकती हो।

—तुम्हारे जैसों के साथ वह बहुत पहले से क्लियर है। तुम्हे किसी ऐसी औरत को अपनी मिसेज़ बनाना चाहिये था, जो तुम्हारे इशारे पर नाचती रहती। आई काण्ट।

—सो आई माइसेल्फ काण्ट। मैं चला जाऊंगा, तुम सोच-समझकर फैसला कर लेना। बच्चों को अपने पास न रखकर अगर मुझे सौंपना चाहो, तो तुम्हारा बर्डन कम रहेगा।

—और तुम तलाक लेना चाहोगे, दूसरी से शादी करना चाहोगे! मुझे स्पॉइल कर दिया, नाऊ यू विल स्नेयर सम अदर। तुम किसी दूसरी को अपनी मिसेज बनाओगे।

—यह भी तुम्हारी मर्ज़ी पर होगा। पहल तुम्हारी होगी।

आई० ए० एस० अफसर दूसरी स्टेट मे चले गये। कई साल निकल गये। इंजीनियर ने अपनी बेटी के लिए समझौते की हर मुमकिन कोशिश की—रुपये-पैसे से लेकर बाहरी या रिश्तेदारो से दबाव पहुँचवाने तक। आखिर में तलाक की कार्रवाई चली। परिवार खिचकर टूट गया। एक बच्चा आई० ए० एस० महोदय के हिस्से में आया, दूसरा लेक्चरर महोदया के।

तलाक के बाद दोनो ने फिर अपने-अपने परिवार खडे करने की कोशिश की—अलग-अलग शादी करके।

टूटनेवाले परिवार जुड़ते है, एक जगह से उखड़कर, दूसरी जगह जमने की कोशिश मे। खाँचे और दरारें भर भी सकती हैं, बढ भी सकती है। स्टेट से चले जाने के बाद मैंने सुना कि वह आई० ए० एस० अफसर साहब सरकारी नौकरी से इस्तीफा देकर अपने नये परिवार को लेकर अमरीका चले गये। उनकी लेक्चरर पत्नी सुना है कि अब खुश है। उनकी शादी किसी डॉक्टर से हुई है, जिसकी उम्र पैंतालीस के करीब है, जिसकी पहली औरत मर चुकी थी। बच्चों के बावजूद डॉक्टर

साहब को लगता था कि जिन्दगी को वह सिर्फ बच्चो के जरिये नही चला सकते। उनको एक अदद औरत की जरूरत थी। आई० ए० एस० की लेक्चरर पत्नी अब डॉक्टर की कानूनी हक प्राप्त पत्नी थी।

अमलेन्दु के बारे मे जो अफवाह हैं, उसके सत्यांश का सही पता तो नही लगता, पर फिर भी बाहरी व्यवहार से अन्दाजा बैठता है। जिन डॉक्टर साहब का मैंने जिक्र किया है, उनको मैं डाक्टर मलिक कहना चाहूँगा। जिन लेक्चरर से उन्होने शादी की है, उन्हे मैं मिसेज़ शीला-मलिक कहना चाहूंगा। शीला मलिक की उम्र पैंतीस साल की है। अपनी पहली बच्ची को उन्होने अपने पिता को, यानी बच्ची के नाना को सौप दिया। वह उसे पढाएँ, लिखायें। बेटी को तो बना लिया, नातिन को अपनी हैसियत मुताबिक 'बड़ा' करें।

मेरे डाक्टर परिचित मित्र कहते है कि मिसेज़ शीला मलिक ने डाक्टर मलिक को तो ओढा-भर है। वास्तव मे वह अपनी आज़ादी को डाक्टर अमलेन्दु के साथ बर्त रही है। डाक्टर मलिक के लिए यह न इज्जत का सवाल बनता है, न उनमे किसी तरह का तनाव है। उनके दोनो बड़े लडके डाक्टरी पढ़ रहे है। उन्हे इससे मतलब नही कि उनकी दूसरी माँ *किसके साथ पिक्चर जाती है या क्लब में किसके साथ दोस्ती बनाये हुए है। डाक्टर मलिक को अपनी प्रैक्टिस और हॉस्पिटल से छुट्टी नही मिलती।* उनका बँगला सुरक्षित है और उस बँगले के रहनेवालो की जिन्दगियाँ अपनी-अपनी तरह से चल रही है, तो उन्हे नाहक दखलन्दाजी करने की क्या जरूरत? उनको एक अदद औरत की जरूरत थी, वह शीला मलिक है। सुना है कि उन्होंने बस एक ही चीज़ चाही थी, उसे शीला ने खुशी से मान लिया। ऑपरेशन करवा लेना उसके हक में भी पड़ता था। पैंतीस साल की उम्र मे क्या वह अब बच्चो के झमेले मे पड़ना चाहती? ममता-वमता को भी वह काफी भोग चुकी थी और उसके झझटो को भी। वह अब आज़ाद है, उसे बराबरी का हक प्राप्त है। नौकरी वैसी-की-वैसी चल रही है, इसलिए भविष्य की सुरक्षा भी है।

नीना को और डॉक्टर अमलेन्दु की पत्नी को शीला मलिक के बारे

में पता है। वाहर कुछ भी होता रहे, उन्हें क्या मतलव ? घर तो स्थिर है। विघ्नहीन।

साजिन्दे बाबा की मृत्यु साधारण और पराई होते हुए भी मुझे काफी दिन तक प्रभाव-सी घेरे रही। होता है कि कोई घटना गुज़र जाती है, पर उसकी छाप और उसका असर रह-रहकर उभरता-वैठता रहता है।

और कुछ नही, मैं यही सोचता रहा कि वह अपने एतकादो को किस तरह बनाये रहे और ठेठ विपरीत परिस्थितियों मे किस वेबाकी से रह आए ? मेरा मतलव है अपने बेटे के पास, उन्हे यह भी पता था कि उनके सामने कोई वात कितनी रुक सकती है, उसके बाद वह उनके मुताबिक शक्ल ले लेगी।

उनकी मृत्यु का औपचारिक तार जाने पर भी वही हुआ जैसा उन्होंने कहा था। उनका वेटा नहीं आया। महीनों बाद उसका कोई आदमी आया और उस पुश्तैनी घर को फरोख्त कर गया। अव्वल तो सामान था ही क्या; जो परिवार की, देवताओ वगैरह की तस्वीरें थी, एक-दो साजिन्दे बाबा को प्राप्त सराहना-पत्र थे, उनके पुराने कपड़े थे, उन्हें वही बाँट गया। पडोसियों ने चाव से और दान-प्राप्ति के भाव से उन चीजों को लिया। बूढ़े आदमी की किसी चीज को वे लोग शुभ मानते थे—वह रहेगी तो आशीर्वाद की तरह रहेगी—सुख देगी, उम्र देगी।

मैं तो साजिन्दे बाबा का वह दृश्य नही भूल पाया, जब उन्होने सारंगी और तबले की जोडी मँगाई थी और उस पर स्नेह से हाथ फेर रहे थे। मै उनकी उस तृप्ति और आनन्द का अन्दाजा लगाना चाहता था, जिसे वह मृत्यु की चौखट पर खड़े अपने में स्फूर्त कर रहे थे; लेकिन उस अद्‌भुत अहसास के अंश को भी पकड़ पाना मेरे लिए सम्भव नही हो सका। वह निश्चित रूप से अन-सम्प्रेष्य था, नितान्त उनका था।

रजनीशकान्त उनके उन दोनों साज़ो को ले गया था। उसने उन्हे उसी पूजा के स्थान पर रख दिया था, जहाँ उसकी माँ की पूजा की

तस्वीरें थी, जहाँ मीना के कृष्ण थे और उसके घुंघरू ।

भावना भी कितनी तरह से जिलाती है। रोजमर्रा मे उसकी गुंजाइश न होते हुए भी वह जारी रहती है, महज एक स्फुलिंग की तरह या आतिशबाजी की फुलझड़ी की तरह रोशन करने और बुझ जाने के लिये ।

रजनीश बताता है कि उसने अपनी माँ के कमरे को ठीक वैसा रख छोड़ा है, जैसा माँ के सामने था। वह उसमे मुश्किल से कभी जाता है। उसकी पत्नी को उस कमरे से कोई सरोकार नही है । उसके बच्चे, लड़का और लड़की, अपने ही मे मस्त है, उन्हे कमरे से क्या मतलब ! बल्कि लडका तो चाहता है कि वह कमरा उसे दे दिया जाये, खामख्वाह उसे घेर रखा है।

रजनीश वैसा भी नही होने देता । उसे यह मजूर है कि वह कमरा बन्द देवालय-सा या तिजोरी-सा गर्द से अटता रहे, लेकिन वह वैसा रहे। वसा बना रहे ।

बड़ा अजीब-सा है रजनीशकान्त । कभी-कभी भावुकता मे कहता है—जानते हो, मेरा दिल या जिन्दगी उसी घर की तरह है, कलह और आपाधापी से भरा हुई । मैं जो जिन्दा हूँ, वह अपने सगीत की वजह से। वह आधार भी है, बहाना भी है। वह कमरा मेरा यही हिस्सा है। बन्द । गर्द से भरा। कभी-कभी खुलनेवाला । मेरे रागों को खुनखुनानेवाला ।

मैं नही सोच पाता कि रजनीश के बारे मे लिखते वक्त कभी-कभी मेरी भाषा कविता की मुद्रा क्यो ले लेती है । रजनीश अपनी वास्तविक स्थितियों में इस तरह उलझा रहता है कि लगता है बहुत दुनियादार और बिकने-बेचनेवाला है; लेकिन जितना उलझता है, उतना ही उचटता है; जितना उचटता है, उतना ही गहरा और आन्तरिक हो जाता है—किन्ही क्षणों मे भावनाओं के बिम्ब-सा ।

उसको काम की सौदेबाजी करते देखिए—लगेगा कितना तेज है ! किसी मकान का नक्शा बनवाने जाइये, वह ज्यादा-से-ज्यादा कीमत बतायेगा । आप कहिये कि दूसरे इस नक्शे बनाने का मेहनताना कम ले सकते

हैं, तो वह जवाब देगा—नक्शा बनाना और उसके मुताबिक इमारत खड़ी करना हरेक के बस का नहीं है। मिस्टर, यह आर्ट है। यह पत्थरों का आर्ट है, लेकिन इसमें इमेजीनेशन की दखलन्दाजी उतनी ही जरूरी है, जितना आपका आदमी को काबलियत को पहचानकर ज्यादा कीमत देना।

फिर वह अपने विशेषज्ञ होने का रौब गालिब करेगा। भाई साहब, डाक्टर अपनी डाक्टरी चलाने के लिए फौरन किताबें मँगाता है, वकील कानून की किताबें खरीदता है। हमें भी आर्कीटेक्ट की फॉरेन-मेगज़ीन्स मँगवानी पड़ती है। कम स्पेस में पूरी मॉडर्न सुविधाएँ, उसके बावजूद डिजाइनिंग, फिर कलर-कॉम्बीनेशन। इमारत की बनावट की भी अपनी राय होती है—वह बनानेवाले और बनवानेवाले के टेस्ट और चरित्र को बताती है।

वह आगे भी भाषण जारी रख सकता था जब तक कि वह यह न जनता दे कि वह क्या है? जब तक कि सामनेवाला यह न महसूस करने लगे कि कीमत चुकाने के बाद भी वह अहसान से दब रहा है।

तब चलता उसका मूड और काम शुरू होने के बाद मालिक को उसके पीछे-पीछे भागना पड़ता।

रजनीशकान्त कहता—क्या करूँ यार, काम इतना है कि मैं चाहता हूँ कि चार हो जाऊँ, पर हो नहीं सकता। कोई हो सकता है भला? फिर कमाना जिन्दगी के लिए होता है, न कि ज़िन्दगी कमाने के लिए। पर जो किया जाये कलात्मक तो हो।

विरोधाभासों से जटिल उसका व्यक्तित्व कभी-कभी तो इमारतों की बनावट में भी झलक जाता। किसी ऑफीसर का उसने बँगला बनवाया। दीवारों पर उसने कीलनुमा आकार दिये। तिरछी कील के बड़े आकार को रॉकेट की तरह उसने छत पर ठहराया।

वह बोला—यह उस आफीसर की च्वाइस है। वह ऐसा कुछ चाहता था जो उसे जँचे। मैंने उसके चरित्र से पहिचाना कि वह कीलों के आकार को पसन्द कर सकता है। उसने (उस अफ़सर ने) कहा—मैन, तुमने हमारी अन्दर की कीलों को बाहर निकाल दिया। हम दीवारों की कीलों

को देखते है, हमें महसूस होता है, हमारी अन्दर की कीलें निकल गई। हमे राहत लगती है।

रजनीशकान्त को इस तरह की बात करते सुना जाये तो लगेगा आप किसी गम्भीर और ठोस शख्स से सामना कर रहे हैं। लेकिन यही व्यक्ति जब आपके बर्तावे मे आयेगा, तब आप उकता जायेंगे, उसकी अस्थिरता की वजह से। बस वह मूड-ही-मूड होता है ऐसे वक्तो मे।

रजनीशकान्त का एक रिमार्क मुझे अकेले में भी हँसाता है। वह उसके लिये तकिया-कलाम की तरह था।

कोई बरात बैण्ड-बाजे के साथ जा रही है। आप रजनीश के साथ रेस्त्राँ में चाय पी रहे है। बराती भोंडे तरीके से किसी भी फिल्म की धुन पर नाच रहे है।

पहले वह कहेगा—यह नँकल कब और कैसे शुरू हो गई, पता नही चलता, लेकिन बड़ी बेतुकी लगती है। न अंग्रेजो नाच, न लोक-नृत्य। सपेरा नाच भी, रॉक एण्ड रोल की मरोड़-तरोड़ भी। किसी खूबसूरत चीज को बदसूरती से भद्दा और भोंडापन देना हो तो उससे लिए हम हिन्दुस्तानी नकलची कितना गर्व करते है!

लेकिन मैं रजनीशकान्त के तकिया-कलाम का जिक्र कर रहा था।

दूल्हा चाहे घोड़ी पर हो या तख्ते-ताऊसवाली रोशन कार पर, उसे देखते ही रजनीश बोल पड़ेगा—देख, साला कितना खुश हो रहा है। देख! देख! साला अपने को पता नही क्या समझ रहा है! साले को यह नही पता कि बेटा किस्मत फूट रही है। रोयेगा साला ज़िन्दगी-भर! ज़िन्दगी-भर!

उसके कहने का तरीका इतना मज़ाकिया होता है कि बेसाख्ता हँसी आ जाती है।

आप हँसते रहिये। वह गम्भीर हो जायेगा टिप्पणी करके।

रजनीशकान्त पल मे मज़ाकिया हो सकता, पल मे गम्भीर। अभी धूप देकर चमक रहा है, अभी दिल मे कोई दु ख-सा उठेगा, वह छाया की तरह अस्पष्ट हो जायेगा—धुँधला-धुँधला-सा।

स्थिरता, गति और हलचल व्यक्तिगत जीवन के साथ भी सक्रिय रहते हैं और समाज, राष्ट्र तथा संसार के साथ भी, बल्कि ब्रह्माण्ड मे भी। हलचल गति के घनत्व को भी कह सकते है। विकास बिना क्षय के सम्भव नही होता। फिर यह अन्त घटना तो कोई मानक या पैमाना चाहती है, जिसके ज़रिये जाना जा सके कि विकास हो रहा है अथवा गति उल्टी चल रही है।

जिन्दगी मे पैदा हुई जटिलताओ को देखकर लोग कहते हैं, इससे पहले की सादी जिन्दगी अच्छी थी। मनुष्य के पास काम भी था, आराम भी। शांति भी थी और लगाव भी, लेकिन शायद यह तथ्य इतना सच नही है। पहले भी तनाव थे, खतरे थे, साहसिकताएँ थी। न होते तो दूसरे देशों के लोग हमलावर बनकर किन्ही दूसरे देशो पर ध्वस वरपा नही करते। लोग व्यापार और सम्पन्नता की तलाश मे समुद्री यात्राओ का जोखम नही उठाते। बड़े जोखमो का सम्बन्ध बडी सफलताओ या बड़ी असफलताओं से जुड़ा रहता है। या तो तख्त या तख्ता। जोखम क्या तनाव-रहित होता है ? जोखम मे दुविधा की स्थिति क्या शान्ति को सलीब पर नही लटकाये रहती है ?

आज भी वही है, सिर्फ लक्ष्यों और संघर्षों की शक्ल बदली हुई कही जा सकती है। जोखम भी ज़िन्दगी का तत्त्व है, जिसके साथ या जिसमे संघर्ष अर्न्तानिहित है। जितना जोखम, उतना ही घनत्ववाला संघर्ष। चढ़ाव या गिरावट।

बडे स्तरो पर इन तत्त्वो को फलित होते हुए देखा जा सकता है, लेकिन मैं सोचता हूँ, वे सारे तत्त्व मेरी जिन्दगी पर भी लागू होते है, आपकी ज़िन्दगी पर भी, अमलेन्दु, रजनीशकान्त की जिन्दगी पर भी। जो लोग मेरी इस सत्य-कथा मे नारी और पुरुष बनकर आये है (गुज़र भी गये) उनकी निजी ज़िन्दगी पर भी इन्हें लागू किया जा सकता है।

जोड़ और घटाव तो साथ-साथ हैं। गति भी है, पर स्थिरता के साथ। इसी बीच में हलचल कूद पड़ती है।

डॉक्टर अमलेन्दु जहाँ डॉक्टर है, वहाँ एक लिहाज से स्थिर है। एक बँधा-बँधाया कार्यक्रम। इतने बजे से इतने बजे तक क्लीनिक में

बैठना, मरीज़ों को देखना। दिन और रात के बीच किसी भी आनेवाले बुलावे के साथ मरीज़ देखने जाना। यह रोजनामचा स्थिरता और एकरसता का द्योतक है, लेकिन क्या यह स्थिर स्थिति है? इसमें अनुभव के आधार पर या उसके परिप्रेक्ष्य मे क्या घटत-बढ़त नही है? क्या गति नही है?

इसके मतलब स्थिरता मे गति है। लगता है हर व्यक्ति अपनी ही ज़िन्दगी को वृत्तों और घेरों में बाँटे हुए है—कई घेरों में। हर वृत्त में वह गतिशील होता है, लेकिन जिस वक्त वह वृत्त म गतिशील होता है, दूसरे वृत्त अपनी पारी का इन्तजार करते होते है, जैसे अमलेन्दु के साथ—*माँ नीना की पारी, उसकी पत्नी की पारी, शीला मलिक की* पारी, अमलेन्दु के बच्चों की बात नही कर रहा हूँ।

नीना अपने कार्यक्रमो वगैरह को लेकर गतिशील है—वैसे स्थिर।

डॉक्टर अमलेन्दु की पत्नी बच्चों और घर को लेकर गतिशील है, वैसे स्थिर।

डॉक्टर अमलेन्दु अपने पेशे और शीला मलिक के साथ गतिशील है, नीना और पत्नी के मामले मे स्थिर।

हलचल की गुजाइश नीना से जुड़ी हुई नही है, उसकी पत्नी से हलचल मचने की कम आशा है, क्योंकि वह भी अब तक बच्चों में रमकर उधर से तटस्थ-सी हो गई है। पेशे को अमलेन्दु पेशा मानता है और कभी-कभी कहता है—यह सब मशीनी वर्क है, अपने-आप चलता रहा है। चलता रहता है तो अनाप-शनाप पैसा भी आता रहता है। वह कहता है—यह सब हमारे लिये सामान्य है, नीरस है। हाँ, कभी-कभी ऐसे केस आते है, जो ध्यान और ताल्लुक दोनों की अपेक्षा रखते है। उनकी फीस भी ज्यादा होती है। उनको उसी स्तर पर निबटाना होता है।

शीला मलिक के साथ भी रफ्तार गिर रही है। न पहली-सी रुचि शीला मे है, न डॉक्टर अमलेन्दु अपने मे पाता है। लगता है, शीला-मलिक का जोश चढ़ने के बाद उतराव पर है।

अमलेन्दु सोचता है कि शीला मलिक से उसने किस तरह का रिश्ता बैठाया? क्या आशा रखी उससे?

उसे अपने से जवाब मिलता है—शीला मलिक खूबसूरत है, इसलिये खूबसूरती का रिश्ता। शीला मलिक एडवांस है, इसलिये वह रिश्ता। शीला मलिक उसकी मिसेज की कमी क्लब वगैरह में पूरा करती है, इसलिये वह रिश्ता, लेकिन अमलेन्दु को महसूस होता है कि इससे गहरे भी शीला मलिक से निःस्वार्थ रिश्ता है। वह किसी हिस्से की तृप्ति है, किसी भाग का संतोष, लेकिन निःस्वार्थ शब्द उसे अटपटा लगता है। निःस्वार्थ तो कुछ है ही नही। तृप्ति प्राप्त करना भी स्वार्थ है, संतोष प्राप्त करना भी स्वार्थ है।

शीला मलिक में उतार आया, डाक्टर अमलेन्दु इसे जान तो रहा है, लेकिन कह नही पा रहा है। उसने पूछा भी—क्या बात है, आजकल आप अजीब-सी रहती है?

—हाँ, आइ एम डिस्टर्ब्ड फॉर सम डेज।

—फॉर ह्वाट?

'किस वजह से' का जवाब शीला मलिक के पास साफ-साफ नही था। उसने अमलेन्दु को जवाब दिया—यह नही बता सकती, लेकिन उकताहट होती है। ऐसा लगता है, मैं कुछ 'मिस' कर रही हूँ। आई मीन कुछ ऐसी चीज है, जिसे मुझे पाना चाहिये, लेकिन पा नहीं रही हूँ—बावजूद हर तरह की आजादी के, अपनी हर तरह की मर्जी की पूर्ति के।

आप मेरे बारे में सोचती है कि आप मुझसे क्या एक्सपेक्ट करती है?

तुमसे सिवाय साथ के क्या एक्सपेक्ट कर सकती हूँ? तुम मुझे कभी-कभी निरे बच्चे लगते हो—बिलकुल खिलौने।

डाक्टर अमलेन्दु शीला मलिक के इस जवाब से सकपका गया था। क्या वह इस कदर छोटा है मिसेज शीला मलिक की नजर में? उसका मुँह उतर गया था उस वक्त। शीला मलिक समझ गई थी, लेकिन उसने अमलेन्दु की बेचैनी को दूर नहीं करना चाहा। जो सचाई है, उसे वह क्यों लीपे-पोते? क्यों उसको दूसरी तरह से सामने रखे?

'खिलौने' शब्द ने अमलेन्दु से चिपककर उसे धकिया दिया। वह जानना चाहता था कि इसके आगे वह क्या सोचे? शीला मलिक क्या सिर्फ

उमको इस्तेमाल कर रही है ? फ़र्जी तौर पर इस्तेमाल कर रही है ?

यह सवाल उसकी तरफ मुंह कर बैठा, लेकिन तब दूसरा सवाल भी खडा हुआ—क्या तुमने उन्हें इस्तेमाल नहीं किया है ?

शायद इस जांच-पडताल का नतीजा यह हुआ कि दोनों एक-दूसरे से उदासीन होने लगे। याद में औपचारिकता और निभाव की हालत आ गई।

अमलेन्दु को अब लगने लगा कि जिन सम्बन्धों को उसने शीला मलिक के माथ बैठाने की कोशिश की थी या उनको तर्क के ज़रिये पह-चानने की कोशिश की थी, वे हो मकता है पहले रहे हो, लेकिन अब नही है।

शीला मलिक ने उससे एक दिन कह ही डाला—डाक्टर, अब अगर हम अपनी दोस्ती को खत्म कर लें, तो क्या तुम्हे एतराज होगा ?

अमलेन्दु ने अस्पष्ट जवाब देना चाहा—अगर आप नही चाहेगी तो मैं उसे बनाये कैसे रख सकता हूँ !

नही, मै तुमसे पूछना चाहती हूँ। क्या तुम्हे मेरा हटना फील होगा ? शीला मलिक शायद उसके जरिये अपने को भी टटोलने की कोशिश कर रही थी।

अमलेन्दु इस तरह स्वीकृति देकर अपने पर निर्णय लागू करने के हक मे नही था। उसने जवाब दिया—आपको फ़ील नही हो तो आप शुरुआत कर सकती है।

तुम मुझे समझने मे गलती कर रहे हो। हालांकि मै आज भी वही करूँगी, जो मेरी मर्ज़ी होगी, लेकिन ऐसा क्यो लगता है कि मुझे डाक्टर मलिक को सुख देना चाहिये।

क्या अब तक ऐसा नही कर रही थी ? अमलेन्दु ने सवालो के सूत्र को अपने हाथ मे ले लिया था और वह जान रहा था कि अपने को बचाने का हथियार सवाल हो सकते है।

यह स्थिति थी जबकि अमलेन्दु ने सुरक्षित 'खाना' लेने की सोच ली थी। जबकि मिसेज़ शीला मलिक अपने अन्दर की उलझन में काले-सफेद किसी भी खाने पर खड़ी हो रही थी।

वैसा कर तो रही थी, लेकिन वह सब 'मेकैनिकल' था। रियल्ली, आई वाज़ विद यू। तुम जानते हो, डॉक्टर मलिक मे पहले मै एक आई०ए०एस० अफसर की बीवी थी। वहाँ भी मैं अपने को अपने पास रखे रही। मैं हालाँकि 'मैकिनल' नही थी, महज़ साथ होने के लिए साथ नही थी, फिर भी मैंने अपने को बचा रखा था—अपने निजत्व को। आई मीन अपने 'बीइंग' को।

अमलेन्दु अब यह उल्टी-सीधी दार्शनिक बात सुनने को तैयार नही था। वह महसूस कर रहा था, मिसेज शीला मलिक हद से ज्यादा बात को फिलोसीफाइज और अमूर्त कर रही है। उसने पता नही कितनी औरतो से सम्बन्ध जोड़े और तोडे, वह तो इस 'होने-वोने' या अपने को 'बचाने-बचाने' के चक्कर मे नही पडा। नर्स का सवाल उसके और माँ के बीच मे टकराहट बन गया था, उसने उसे कच्चे सूत की तरह तोडकर छिटका दिया। क्या हुआ ? वह अपने रास्ते, नर्स अपने रास्ते लग गई। उसने सम्बन्ध के लिए दूसरा डॉक्टर चुन लिया।

वह झुँझलाहट मे बोला—मिसेज मलिक ! आप लेक्चरर हैं न, आप छोटी-सी बात को भी तूल दे सकती है, लेकिन मैं जानता हूँ कि आप समझौते की चाह मे भटक रही है। आपकी अस्थिरता कही भी उसे बैठाती नही है।

शीला मलिक इस चोट से तिलमिला उठी। वह चाहती थी कि सहज ही अपनी उलझन को थोपते-थोपते किसी हल को पा लें, लेकिन इस शर्त पर नही कि जिसे वह अनुभवहीन और भोला समझती हैं, वह अपने को उससे भी ज्यादा अक्लमन्द और मोन मे श्रेष्ठ जाहिर करे।

डू यू मीन यू नो मी बैटर ऐण्ड कैन थिंक बैटर फॉर मी ? मै अपने को जानती हूँ और मुझे क्या करना चाहिये, यह भी चैक आउट कर सकती हूँ। अब तुम्हें परेशान होने की जरूरत नही है।

अमलेन्दु के लिये साफ सकेत था, मिसेज शीला मलिक अब उससे कोई ताल्लुक नही रखना चाहती।

आगे के दिनों ने इसका सबूत दे दिया।

मिसेज मलिक डाक्टर मलिक के साथ क्लब आने लगी। ज्यादातर

वह यह दिखाने लगी कि डाक्टर मलिक को वह अजहद प्यार करती है। डाक्टर अमलेन्दु ने भी उन्ही का रुख अपना लिया। वह दूसरी मेजों पर ताश खेलने लगा। औपचारिकता और दिखावा वैसा का वैसा रहा। सवाल यह जरूर रह गया कि क्या डाक्टर मलिक जवान बीवी की चाहतों और उसके घहरावों को अपने अनुकूल पायेंगे ? मिसेज़ शाला मलिक जैसी औरत क्या अपने इस बदलाव के प्रति भी स्थिर और स्थाई रह पायेंगी ? क्या उन्होने हलचल को ही तो गति नहीं समझ रखा है ? समझौता, जिसके लिए वह बार-बार उखड़ती हैं, उनकी नजर में स्थिरता और एकरसता के बराबर तो नही है। डाक्टर मलिक अपनी बीवी की इस पलट मे क्या वास्तव मे सहज है ? उनकी तटस्थता मे जो बाधा पैदा हुई है क्या वह उससे उफनेंगे नही ? यही सब तो नही पता लग पाता आज के पलटा खाने व्यक्तियो के बारे में।

नीना और मीना मे जो स्वभाव का फर्क था, उसका उल्टा फर्क था डाक्टर अमलेन्दु की और रजनीशकान्त की पत्नियो मे। हालांकि दोनों उसी जाति और पेशे की बेटियाँ थीं लेकिन अमलेन्दु की पत्नी ने परिस्थितियो को बिना विरोध किये, जितना है, उसको स्वीकार कर लिया था; रजनीशकान्त की पत्नी 'जैसा है' को मानने के लिए तैयार नही थी। वह रजनीशकान्त पर हावी रहकर उसे पकड़े रहना चाहती थी, जबकि रजनीश हाथ मे आ नहीं रहा था।

उसके क्लेशों ने, उसके आतंक ने रजनीशकान्त को छिटकाया, और इस कदर छिटकाया कि घर उसके लिए हौआ बन गया। न कोई खिचाव, न शान्ति।

मैं नही जानता कि मुझे ऐसी असलियत लिखनी चाहिये या नहीं, जिसने रजनीश के घर को नरक बना दिया था और रजनीश पस्त व्यक्ति-सा दर्शक-मात्र रह रहा था।

ऐसी कैसी माँ होती है जो बेटे को साथ मिलाकर ऐसे कारनामे

करने लगे जो पति को त्रामक स्थिति में डाले रहे ? जो गिन-गिन के बदला लेना चाहे, उसमें चाहे उसकी खराबी होती जाये ?

लोग बड़े सरलीकृत तरीके मे कह देते हैं—खून का, जाति का, पेशे का असर जाता थोडे ही है ।

मेरे सामने इस सरलीकृत उपेक्षा के साथ सवाल, तुर्श सवाल, खडा हो जाता है कि जहाँ खून, जाति और पेशा इज्जत-दार घराने का हो वहाँ फिर ऐसा-वैसा क्यों होता है ? मेरे सामने कई उदाहरण साफ-साफ खडे हो जाते है जिनमें कुछ खुले रहे, कुछ दबे-ढके रहे ।

मिसेज़ शीला मल्लिक को मैं जान रहा हूँ कि वह किस तरह किनारे बदल रही है, अभी भी स्थाई किनारे का पता नही है ।

मैं उन लडकियों के बारे मे भी सुन चुका हूँ और पढ चुका हूँ, जिनको सम्पन्नता की तलाश ने 'सोसायटी गर्ल' बना दिया और वे अपने जिस्म को पूँजी मानकर उससे ज़िन्दगी के ऐश बटोरने लगी । एक लोकप्रिय पत्रिका ने ऐसी लडकियो का साक्षात्कार छापा था । उनमे से बहुतों ने अपना नाम नही देना चाहा था । बहुत-सी इतनी हिम्मतवाली थी कि उन्होने अपना नाम भी छपने दिया और फोटो भी । उनकी चुनौती थी कि वह जैसा भी कर रही है अपनी मर्जी मे कर रही है । वे क्यों नही करें जबकि वे इस काबिल है ?

मुझे याद पडता है, उनमे से एक ने यहाँ तक बताया था कि वह नौकरी करती है तो उसे छ सौ रुपये महीने की तनख्वाह मिलती है और वह इस छोटी रकम को पचतारे होटल की सूची में शामिल होते ही दो दिन मे कमाने लगी । हाँ, उसने बडे फख्र से बताया था, मैं एक रात के तीन सौ रुपये पाती हूँ बिना किसी कमीशन की कटौती के ।

वह कभी किसी अच्छे परिवार से सम्बन्धित थी, अब वह अकेली है और खुद मे अपना परिवार है ।

साक्षात्कारकर्त्ता ने उससे सवाल किया था—जब आपका जिस्म कीमत नही ला सकेगा तब क्या करियेगा ? आप भविष्य के बारे मे क्या सोचती है ?

उसने साक्षात्कारकर्त्ता को जवाब दिया था—भविष्य की परवाह

मेरे पास नही है। मैं मौजूदा में जीना जानती हूँ। मैं इतना कमा सकूँगी कि बाद मे आराम से जिन्दगी बसर कर सकूँ।

फिर उसका इससे भी खतरनाक और चौकानेवाला जवाब था—मेरी जिन्दगी मेरी अपनी है। मै इसे कभी भी खत्म कर सकती हूँ, जब यह मुझ पर बोझ साबित होगी। सोसायटी और कानून इसके बारे में क्यों परेशान हो ? और आप भी क्यों हो ? मैं कहती हूँ आत्म-हत्या व्यक्ति का हक होना चाहिए, क्योंकि सोसायटी या कानून उसकी अच्छी जिन्दगी का जिम्मा नही लेते है।

मैं रजनीशकान्त की पत्नी के बारे मे लिखते हिचकिचा रहा हूँ। इसकी दो वजूहात है : पहली, कि मुझे ज्यादातर पता चला है रजनीशकान्त से और वह लगातार के क्लेशो के कारण पत्नी के इतना खिलाफ हो चुका था कि दोषारोपण मे अति को भी छू सकता था। वह उसे साफ-साफ बदचलन कहता था।

दूसरी वजह, कि मुझे कही ऐसा भी महसूस होता था कि रजनीशकांत भावों और उठान से चाहे रोमान्तिक हो, लेकिन लगातार के शराब पीने मे और शारीरिक कमजोरी के कारण वह दिखावटी रह गया था।

दोनों वास्तविकताएँ ऐसी है जहाँ मनोवैज्ञानिक तौर पर आदमी आक्रामक हो जाता है और अपनी कमज़ोरियों को दूसरे पर थोपकर अपना बचाव लेता है।

सही है कि कान्त की पत्नी उसकी अपेक्षा जानदार और अछोजी लगती थी। उसमें दो बडे बच्चों की माँ होने के बावजूद आकर्पण था और अतृप्त प्यास झलकती थी। सही है कि रुपये-पैसे के मामले मे वह रजनीश पर तरस नहीं खाती थी और ज्यादा से ज्यादा ऐंठने की कोशिश मे रहती थी। (रजनीश जैसे खर्चीले और फैयाज़ के लिये यह ज्यादती शायद उचित भी हो सकती थी।) सही है कि उसको आपत्ति नहीं थी। उसका अठारह साल का बेटा बाप की जेब चुराता रहे और मौके पर जबानदराज़ी से भी न चूके। चौदह साल की बेटी को माँ और भाई दोनों की फटकार का शिकार होना पड़ता या जब वह बाप का पक्ष लेती थी।

रजनीशकान्त का कहना था कि उसकी औरत बदचलन है, इसके सबूत उसके पास है। उसने अपने दोस्तों को घर पर लाना बन्द कर दिया क्योंकि उनमे से दो ने उसकी पत्नी को फँसाया, या उसकी बीवी ने उन दोनों दोस्तों को फँसाया। रजनीश कहता है, ओछे स्तर के आदमियों की दोस्ती में यह खतरा रहता है।

वह कहता कि उसकी औरत तो साफ कहती है कि जब तुम दूसरियो के पीछे रहोगे तो मैं क्यों नही रहूँगी ? रहूँगी ! तुम्हारी ताकत हो तो रोक लो !

ताकत तो रजनीशकान्त में किसी तरह की नहीं रह गई। उसके पास सिर्फ उबाल रह गया था, या हद से ज्यादा डर।

वह कहता—मैं करूँ क्या, बेटी की वजह से न घर छोड सकता हूँ, न औरत। और छोडने की कोशिश करता हूँ तो कमबख्त माँ-बेटे और ज्यादा तंग करने लगते हैं।

मैं कभी दबी जबान से कहना चाहता—क्या समझौते और शान्ति का कोई रास्ता निकल सकता है ?

वह कहता—किसमें ? उस बदचलन से जिसकी इज्जत ढकते-ढकते मैं पागल हो गया लेकिन वह बाज नही आती ? उस बेटे से, जो इधर-उधर मेरे नाम से रुपया चढाता फिरता है और मैं चुकाता फिरता हूँ ?

मुझे वास्तव में भन्नाहट आ जाती जब वह अपनी औरत को वेश्या तक कहता और यहाँ तक कहता कि इसमें वह अपने बेटे की मदद लेती है।

मैं नही समझ पाया रजनीशकान्त की यह कौन-सी स्थिति थी और उसकी औरत का बदला लेने का यह कौन-सा तरीका था—अगर ऐसा सच था।

फिर अगर दूसरे लोग भी जन्म और खून का हवाला देकर उसकी औरत को सानते थे, या उस पर कीचड़ उछालते थे तो वे भी कहाँ गलत थे जब आदमी खुद लाछन लगाता था !

मुझे यह मान लेने में कतई गलत नही लगता कि अपनी सामाजिक भीरुता या बदनामी के डर से मैं रजनीशकान्त के घर जाने से हमेशा

दिया, यह कम है ?

सिर्फ इतना ही नहीं, अब तुम्हारी पत्नी और बेटा-बेटी तुम्हारी तीमारदारी में लगे हैं। तुम उनके इस मोह का फायदा उठाओ।

वह हँसता हुआ व्यंग्य से कहता—तुम रहे लेखक के लेखक ! यह तीमारदारी मेरी नहीं है, उस कमाई की है जो मेरे मरते ही बन्द हो जायेगी।

वह बड़ी कड़वी बात कहता—तुमने देखा नहीं है, खुदकशी करनेवाले को पुलिस पहले अस्पताल लाती है। उसका इलाज होता है। जब वह ठीक हो जाता है, फिर उस पर कानून लागू करके उसे सजा सुनाई जाती है। बेटा, बचने की सजा भुगत ! जिसे फाँसी देनी होती है, उसकी भी बीमारी का बाकायदा इलाज होना है।

तुम समझौता तलाश ही नहीं करते। मैं झुंझलाके झिड़कता।

वह व्यंग्य में ही कहता—जहाँ समझौते की सारी सीढ़ियाँ उखड़ गई हों, वहाँ उस तक कैसे पहुँचा जा सकता है ? माँ-बेटे दोनों बड़े हिसाबी हैं। मोह-तोह यहाँ कुछ नहीं है, तुम गलतफहमी में हो। अब तो उसकी मौज है चाहे जैसी राम-लीला रचाये घर पर। देखते नहीं कैसी बन-ठनकर आती है। डाक्टरों को सुझाती है कि किसी तरह वह ख़याल करते हुए इलाज करें ताकि मुर्गा हलाल न हो जाये।

रजनीशकान्त की यह ज्यादती थी। मेरी समझ से बाहर था कि वह अपनी औरत को इतना गिरा हुआ क्यों समझता है ? और कि उसकी पत्नी उसके दोषारोपणों को नकारती क्यों नहीं है ? बल्कि वह यह क्यों कहती है—अगर यह मेरे हँसने-बोलने से फँसकर तुम्हारा इलाज ख़याल करके करता है तो मेरा क्या जाता है ?

फिर रजनीश कहता—तुम यह नहीं समझता कि मैं मरना चाहता हूँ। अरे भाई, मैं जमकर जीना चाहता हूँ और जल्दी ठीक भी हो जाऊँगा। मुझे बेटी की शादी करनी है अभी। अभी मुर्गा हलाल होना नहीं चाहता, सो कि मौत द्वारा पैदा कर दी रही है।

एक बार मेरे में दुर्भावना उठी। हालांकि यह स्वार्थ की हद हो सकती है, लेकिन मैं इसे लिखना चाहूँगा।

मैंने सोचा, रजनीश के दोषारोपणों की हकीकत जानने की कोशिश करूँ। मै इसको औरत को छूट देकर और छूट लेकर जानूं कि क्या वह वास्तव मे बदचलन है?

मैंने इसे राज न रखकर रजनीश को बताना चाहा और उसकी प्रवृत्ति का जायजा लेना चाहा। मैंने रजनीश से कहा—तुम कहते हो तुम्हारी पत्नी बदचलन है। बोलो, मैं छूट देकर उसको जाँचूं?

रजनीशकान्त का मुँह उतर गया। वह मुझे इस तरह देखने लगा जैसे मैंने उसके छुरा भोंक दिया हो।

क्या तुम्हारी भी नीयत उस पर है? तुमसे ऐसी चाह की आशा नही थी। तुम मुझे बनाकर ऐसा करना चाहते हो?

मुझे ताज्जुब हुआ कि उसके चेहरे पर लाली उभर आई थी और आँखों मे गुस्सा। औरत पर अधिकार होने या रखने का उसका हक उसके चेहरे पर स्पष्ट था।

मुझे उसी वक्त अपनी गलती महसूस हुई। उसके आखिरी वाक्य ने तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी—वैसे क्या है यार, खूबसूरत औरत पर सभी फिसल जाते है, और जब औरत रास्ता दे फिर दिक्कत क्या है!

यह इतनी कड़वी गोली साबित होगी, इसका मुझे अन्दाजा नही था। मैंने अपनी बात को 'मजाक कर रहा था' कहकर उडाना चाहा, लेकिन बात बिगड चुकी थी।

रजनीशकान्त शायद मुझे लेकर दिमाग मे डर पालने लगा था। नतीजा यह हुआ कि वह मुझसे खिचने लगा। उसका व्यवहार मुझसे बदलने लगा, जिसे मैं पहिचान रहा था। मैं अपने उस दु:साहस की वजह से कही खुद अपने को गलत पा रहा था। उसकी पत्नी अस्पताल मे आती, खास तौर से मेरी मौजूदगी मे, तो पता नही वह कितनी तरह से बेचैनी जाहिर करता। वह मेरी आँखों को देखता, उसके बात करने के ढग को देखता। उसने विरोध करने का दूसरा तरीका अपना लिया था। वह दवा या फल न लेने की जिद करता। मैं उसको कोई सलाह देता तो उसको मानने के बजाय वह कहता—ठीक है, अपने-आप सब सही हो जायेगा।

मैंने अपने को खुद विकट परिस्थिति मे डाल लिया था। अव मेरे पास एक ही रास्ता था कि मैं अस्पताल आना छोड़ देता। मुझे वैसा करना पड़ा, हालांकि मुझे इसका अफसोस बहुत था। मेरी यह समझ मे नही आया कि सारा कुछ जानते हुए मैंने ऐसा क्यो किया ?

वहरहाल एक दरार पड़नी थी, वह पड़ गई। रजनीशकान्त अब मुझसे भी हट चुका था। वह अस्पताल से ठीक होकर घर पहुँच गया, लेकिन लम्बे अरसे तक मुझसे नही मिला। मैंने भी सोच लिया, नही मिलता तो मेरी क्या गरज है ?

एक पुरानी धारणा को मै आदमी की असलियत मानता हूँ। आदमी नीचता या कमीनियत में उतना ही जिन्दा रहता है, जितना श्रेष्ठताओं मे। जिन्दा रहने के मतलव है, उसमे कमीने विचार भी अच्छे विचारो के साथ वरावर टकराते हुए उठते हैं।

मैंने सोचा, चलो अच्छा हुआ, उससे पीछा छूटा। एक वदनामी जो रजनीशकान्त के साथ जुडी है, जिसको मैं बिना किसी फायदे के अपने साथ ले रहा था, उससे भी वचा; और सच कहूँ कि मुझ पर श्रेष्ठ होने का वह भाव भी हावी हुआ, जिसके लिए मैं दूसरों को बुरा बताता था। वही कि रजनीशकान्त या उसकी औरत या उसका लड़का आखिर तो उस तवके के है, जो छोटा और उपेक्षा किए जाने लायक है और शायद मैंने यह तर्क अपने वचाव और अपनी गलती ढँकने के लिए अपने दिमाग मे लिया था। इसीके तहत मै अपने सामने अपने को श्रेप्ठ भी साबित करना चाह रहा था।

गहरे से गहरे सम्वन्धो और निर्णयो के मौको पर शायद हमारी कमीनियत ही हमारी ढाल बनती है।

क्या रजनीशकान्त या अमलेन्दु ऐसी ढालो को नही इस्तेमाल कर रहे थे ? क्या हम सब ऐसी ढालों को वक्त-वक्त पर अपने बचाव के लिए नही लेते ?

रजनीशकान्त और मुझमे पूरी तरह से अलगाव आ गया। यहाँ तक कि धीरे-धीरे फाट इतना हो गया कि महीनों किसी की शक्ल किसी को नहीं दीखती। सामने भी पड़ते तो अदेखा करके निकल जाते।

फरक क्या पड़ा ? वह अपनी तरह मे, मैं अपनी तरह में। यही सुख है आजकल की जिन्दगी का। आप जब चाहे जिससे हट जाएँ और उसको बाहर कर दें अपने से।

रजनीशकान्त मेरा कुछ नही रहा। मैं उसका कुछ नहीं रहा। जो वजह थी वह पोटे-पाटे विचारो मे पट गई।

लोग कहते है अगर इस सृष्टि मे जीव का जन्म नहीं होता तो प्रकृति अनदेखी, अनभोगी एव अनसराही रह जाती। और अगर जीव का नाश नही होता, सृष्टि जीवों से बज-बजाकर भर जाती। यह मानना कि जनसख्या अगर ज्यादा हो जाती है तो प्राकृतिक तत्त्व, बाढ, भूकम्प, महामारी उसे खत्म करते है, उतना ही काल्पनिक है, जितना यह माना जाना कि ब्रह्मा सृष्टि उत्पन्न करता है, विष्णु सहारता है, शिव ताडव करके प्रलय लाते है। कौन है ब्रह्मा, विष्णु, शिव ? कल्पनाएँ। उद्भव, विकास व अन्त के काल्पनिक प्रतीक। आदमी भी पैदा होता है, जीता रहता है, फिर किसी दिन मर जाता है। हम कारण ढूँढते हैं—क्यो मरा ? कारण मिल जाते है, क्योकि वह घटना होने के बाद सोचे और लागू किए जाते हैं।

सवाल यह नहीं है कि कोई जन्मा तो क्यों जन्मा ? मरा तो क्यों मरा ? हालाँकि जनमने-मरने के बीच ही धर्म, अर्थ, काम सब पड़े है। आदमी ने इन्हे अपने लिए बिछाए हैं। किसी के मरने के बाद हम बडे जतन से कुछ ऐसे सस्कार और रीति-रिवाज पूरे करते है ताकि हम सन्तुष्ट हो जाएँ कि मरनेवाले को शान्ति प्राप्त हो गई।

वास्तव मे क्या मरनेवाला शान्ति प्राप्त करता है ? क्या हम मरनेवाले को शान्ति देने के उपाय करते हैं ?

नही। वास्तव मे हम अपने को उसकी यादो से मुक्त करना चाहते है। उसके मोह से, जो हमारे साथ उसके रहने से पैदा होता रहा है, जो काफी गहरा हो गया है, हम उससे छुटकारा पाना चाहते हैं। उसके अलगाव का एक दबाव हम पर पड़ता है। हम तरीके-तरीके से उस

दवाव से छुटकारा पाना चाहते हैं। वरना दुर्घटनाओं मे, हत्या द्वारा या युद्ध में सैंकड़ों-हजारों रोज मरते है, हम न उनके लिए अफसोस करते हैं, *न उनके लिए तेरही या वरसी करते है।* हम तो ऐसी खवरों को खवरों की तरह पढ़ जाते हैं। यहां तक कि सडक पर कोई मरा पड़ा हो तो हम देखते हुए गुजर जाते हैं—अपना उसमे क्या वास्ता ?

यानी, हम किसी के मरने के वाद जैसा भी, जो कुछ करते है, वह अपने लिए करते है, उसकी जब-तब आनेवाली यादों से मुक्ति पाने के लिए। मामला सारा सम्बन्धित हो जाता है 'मैं' से, मैं की शान्ति और सन्तुष्टि से।

मैंने इस कहानी को लिखा, हालांकि यह हकीकत है, तो इसलिए कि रजनीशकान्त की मृत्यु हो चुकी है। मैं कहीं उससे जुडा था, उसके मरने की खवर ने मुझे परेशान किया, मेरे पास यही उपाय था कि मैं उसकी तेरही, वरसी, श्राद्ध सब इसी तरह मनाऊँ—यानी लिखकर। लेकिन यह भी सच है कि वावजूद उससे फर्क आ जाने के कही-न-कहीं मैं उससे मुक्त नही हुआ था, इसलिए इतना सारा लिखा। उसके बारे मे तो लिखा ही, उसके चारों तरफ जो घेरा था, या जो उससे सवधित थे उनके भी वारे में लिखा। उनको लिये वगैर रजनीशकान्त की जीवन-*यात्रा को सही रंग और सही पृष्ठभूमि नहीं मिल पाती।*

फिर एक वास्तविकता की तरफ ध्यान खीचना चाहता हूँ। इसमें जो भी लिखा है, मैंने लिखा है। वैसा लिखा है जैसा मैंने देखा, जाना, अनुभव किया, पाया। और मैं यह भी दावा नही कर सकता कि मैंने जो लिखा वह सही और सच्चा हो।

कैसे हो सकता है ? आदमी को कैसे देखा जा सकता है ? कैसे समझा जा सकता है ? जबकि असलियत तो यह है कि आदमी एक ही क्षण मे सोचता कुछ होता है, निर्णय किसी और वात के सम्बन्ध में लेता होता है, करता कुछ और होता है।

वैसे भी आदमी वडा दुरूह है। इसलिए कहानी के अन्तिम हिस्से पर आकर मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप मान लीजिए कि इन्द्रावाई, सन्यासी, नीना, मीना, अमलेन्दु, रजनीशकान्त, साजिन्दे वावा, या और

जितने लोग इस कथा में आए हैं—हाँ शीला मलिक भी, अन्य भी, वे सब थे, अब नहीं है। वे क्योंकि मेरे द्वारा देखे गये, अनुभव किये गये, इसलिए वे अपनी तरह नहीं हैं, मेरे अनुसार है।

मैं उदाहरण के तौर पर रजकीशकान्त की पत्नी को लेता हूँ। आप यह सवाल कर सकते है कि उसकी पत्नी को ही क्यों ले रहे है?

इसलिए कि न मैं रजनीशकान्त से पूछता कि क्या मैं उसकी पत्नी की बदचलनी को जाँचूँ, न मुझमे-उसमें फर्क आता।

और मैंने कहा ना, क्या पता मेरे अन्दर के किसी कोने में उसके प्रति कोई आकर्षण पल रहा हो जो इस तरह बहाने से पोशाक पहनकर मेरी इच्छा बना हो।

क्या पता बदचलनी का माहौल रजनीशकान्त ने अपने शक और अपने चरित्र के कारण पत्नी के चारो तरफ बुना हो? क्या पता जिन लोगो ने उसको वेश्या की बेटी के कारनामे कहकर बदनाम किया हो, वे कहीं-न-नहीं अपने मे खुद ऐसे हो?

यह भी मान लें कि रजनीशकान्त की पत्नी उस रास्ते पर चली हो, तो भी यह कैसे जाना जाए कि वह गलत चली? अपने लिहाज से तो वह उसी तरह चली जैसी उसे ज़रूरत महसूस हुई होगी।

मुझे एक बात ज़रूर लगती है' हम अपने को नापने के लिए दूसरा फीता रखते हैं—अक्सर रखते ही नहीं; दूसरो को नापने के लिए हर वक्त अपने विचारो का फीता हाथ मे लिये रहते है। क्यों?

मैंने भी इस कहानी या कथा या हकीकत कुछ भी कहिए, इसमें क्या किया? हर वक्त फीता लिये रहा हूँ और नाप-नापकर उसे गढता रहा। सब उस फीते के मुताबिक निर्णय तथा आप्त टिप्पणी पाते रहे।

पता चला कि रजनीशकान्त की चिन्ता उसकी बेटी थी, जिसके बारे मे उसने चाहा कि वह अपने किसी मित्र को गोद दे दे। आखिरी वक्त मे उसने अपने उस मित्र को बुलाया भी, लेकिन उसकी हिम्मत नहीं पड सकी कि वह अपनी पत्नी के सामने यह प्रस्ताव रख सके। उस दोस्त ने बताया कि उसने जब कहने की तैयारी की तो पसीने-पसीने हो गया और बहाना करके बात को दूसरी तरफ मोड़ दिया। उसकी यह

चिन्ता उसके साथ चली गई।

यह भी कैसे माना जा सकता है कि उसके प्रस्ताव को उसकी पत्नी मान ही लेती, जबकि माँ होते हुए भी उसका पति उसको नाकाबिल करार देकर बेटी को अपने मित्र को सौंपने जा रहा था? रजनीशकान्त का बेटा भी ऐसे प्रस्ताव को क्यों मानता? आखिर रजनीश तो अपनी तरह से उन दोनों को देख रहा था। उसकी नजर में उसकी बेटी असुरक्षित थी, लेकिन वही तो सब-कुछ नहीं था!

अब सवाल उठता है कि रजनीशकान्त जब मर गया तो उसकी बेटी का भविष्य क्या होगा? सीधा-सा कटा-कटाया, सिला-सिलाया जवाब हो सकता है कि जैसा उसके भाग्य में होगा। यानी जैसी भी उसकी नियति होगी। चौदह-पन्द्रह बरस की बच्ची के उत्तरदायित्व से छुटकारा पाने का कितना आसान तरीका है? हो सकता है उसके दिमाग मे भी भाग्य और नियति वाली शर्त बैठी हो—या लगातार बैठाई गई हो।

अगर नियति और भाग्य का ही सब-कुछ करा-धरा है या यही सब करता है तो फिर सबको फुर्सत। फिर कौन सही, कौन गलत? कौन बुरा, कौन अच्छा? काहे का फीता? काहे का नाप? फिर जैसा होता है, होना है।

फिर सब अपनी-अपनी तरह, अपनी जगह ठीक। चाहे अमलेन्दु हो, उसकी पत्नी हो, रजनीश रहा हो, उसकी पत्नी हो, बेटा हो, बेटी हो। नीना रही हो या मीना। मैं हूँ या हम सब हो।

इधर भी उलझाव और उधर भी उलझाव। जिन्दगी बीच मे।

मैं इस कथा को कहाँ तक चलाऊँ? जब इन्द्राबाई से रजनीश की पत्नी और उसके दोनों बच्चों तक लिखा, फिर आगे क्यों न लिखूँ? लेकिन अपने बारे मे क्यो न लिखूँ? दूसरो पर क्यो लिखा या किस हक से लिखता हूँ?

फिर उलझाव!

जिन्दगियाँ तो सामने है और साक्षात् है, जी रही है, फिर भी लगता है कि चक्रव्यूह, चक्रव्यूह ही है।

हरेक अपने साथ चक्रव्यूह को लेकर चल रहा है उसी मे रहकर,

उसी में सीमित होकर चल रहा है।

रजनीशकान्त की मृत्यु उसको उसके चक्रव्यूह से मुक्त कर गई, लेकिन…

डाक्टर अमलेन्दु की क्लीनिक जोर-शोर से चल रही है। उसका भी अपना चक्रव्यूह है।

रजनीशकान्त की पत्नी अब किससे क्लेश करेगी? किस पर अंकुश रखेगी? किसके सामने अड़ेगी? और किसलिए बदचलनी के दोषारोपण को चुनौती मानकर अपने पर रोगी?

हक भी कैसे-कैसे होते है! नकारात्मक, सकारात्मक। यानी किसीको परेशान करने का हक। किसी से परेशान होते रहने का हक।

हम न जाने किस समझौते, किस शान्ति की तलाश करते हैं, जबकि बेचैनियों और निजताओं को भरे हुए उन्हें दूसरों पर बिखेरते चलते हैं। खुद शिकार होते हैं, दूसरों को शिकार बनाते रहते हैं।

एक संघर्ष है जो अन्दर चलता रहता है, बाहर पैदा होता रहता है, उसमें जूझते रहते हैं। रजनीशकान्त जूझकर गया, बाकी के लिए युद्ध-स्थली खुली पड़ी है।

क्या पता कि आज मैं लिखकर रजनीशकान्त की जिन्दगी पूरी कर रहा हूँ, अपने को उसकी यादों से मुक्त कर रहा हूँ, कल मैं ही नहीं रहूँ।

और क्या जब तक जिन्दा हूँ, यह जरूरी है कि रजनीश की याद आएगी ही नहीं? लिखकर चुक जाना क्या इतनी अचूक दवा है अपने से या दूसरे से मुक्ति पाने की?

जिन्दगियाँ और लोग तो चलते रहेंगे, कोई रजनीशकान्त नहीं रहेगा, कोई 'मैं'।

उसकी पत्नी, उसका बेटा, उसकी बेटी जो अभी चल रही है—थमना तो होगा ही—टुकमुक-टुकमुक। डेंगे-नेंगे।

●

जन्म : 15 अगस्त, 1931 (फैज़ाबाद उत्तर-प्रदेश)

शिक्षा : एम. ए. पी-एच. डी.

प्रकाशित कृतियाँ :

उपन्यास : प्यासे प्राण; नीली झील; लाल परछाइयाँ, यहाँ से कहाँ तक, रूप-अरूप

नाटक एकांकी : बहादुरशाह् जफ़र और अन्य एकांकी; अश्वत्थामा; सदियों से सदियों तक

कहानी-संग्रह : मम्मी ऐसी क्यों थी

आलोचना : सम्वेदना के बिम्ब

अन्य : गांधी दर्शन और शिक्षा; गांधी युग दशा-दिशा (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत), गांधी और भारत, बाल व प्रौढ़ साहित्य की आठ पुस्तकें